प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक

प्राचीन भारत के महान वैज्ञानिक

गुणाकर मुले

ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली

मूल्य
रु 25 00

●

गुणाकर मुले

●

प्रथम सस्करण 1989
द्वितीय सस्करण 1990

●

प्रकाशन
ज्ञान-विज्ञान प्रकाशन
सी 4 बी/123, जनकपुरी,
नई दिल्ली-110 058

●

मुद्रक
गायत्री आफसेट प्रेस,
ए 66, सैक्टर-2
नोएडा (उ प्र)

●

आवरण
प्रमोद गणपत्ये

अपनी बात

पाश्चात्य देशो के वैज्ञानिकों के बारे मे अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं मे काफी साहित्य उपलब्ध है। इन वैज्ञानिको के बारे मे स्कूल-कॉलेजों के अध्यापको से भी विद्यार्थियो को थोडी-बहुत जानकारी मिल ही जाती है। पर, खेद की बात है कि, अपने देश के चरक, सुश्रुत, आर्यभट तथा भास्कराचार्य जैसे चोटी के वैज्ञानिको के बारे मे हमारे विद्यार्थियो को नही के बराबर जानकारी है।

विद्यार्थियो और सामान्य पाठको को दृष्टि मे रखकर प्रस्तुत पुस्तक मे मैंने प्राचीन भारत के दस वैज्ञानिको का संक्षिप्त परिचय दिया है। इन वैज्ञानिको के ग्रथ तो प्राप्य हैं, किंतु इनके जीवन के बारे मे हमे ठोस जानकारी नही मिलती। मूल ग्रथ संस्कृत भाषा मे होने से प्रस्तुत पुस्तक की सीमा में विषयो की विशद व्याख्या सभव नही थी। फिर भी, आशा है कि यह पुस्तक प्राचीन भारत के विज्ञान एव वैज्ञानिकों का प्रारंभिक परिचय कराने मे उपयोगी सिद्ध होगी।

गुणाकर मुले

'अमरावती'
सी-210, पाडव नगर
दिल्ली-110092

क्रम

विज्ञान का आरंभ कब से हुआ?

असल मे विज्ञान उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य। आज से करीब पाँच लाख साल पहले मनुष्य का इस धरती पर उदय हुआ। मनुष्य ने अपने हाथ मे डडा पकडा। इससे उसके हाथ को शक्ति मिली। मनुष्य ने फिर पत्थरो के हथियार बनाए। उसने आग की खोज की। डडा, पत्थर के हथियार और आग प्राचीन मानव के आविष्कार थे।

लाखो साल तक मनुष्य पत्थर के हथियारो का इस्तेमाल करता रहा। फिर उसने ताँबे की खोज की। ताँबे के साथ करीब दस प्रतिशत राँगा मिलाने से काँसा बनता है। काँसे या पीतल के हथियार ताँबे के हथियारो से अधिक मजबूत होते हैं। ताँबे और काँसे की खोज एक बहुत बडा आविष्कार था। आज से करीब पाँच हजार साल पहले की भारत की सिंधु-सभ्यता के लोग ताँबे और काँसे के ही औजार बनाते थे। उस समय पत्थरों के औजारों का भी इस्तेमाल होता था। लेकिन उस समय अभी लोहे के औजारो का ज्ञान नही हुआ था।

फिर भी सिंधु-सभ्यतावालों ने बहुत उन्नति की थी। उनके मोहेंजोदडो और हडप्पा जैसे बडे-बडे नगर थे। इन नगरो की सडके चौडी और सीधी होती थी। पानी के निकास के लिए नालियाँ बनी थी। योजना के अनुसार मकान बनते थे। इन सब बातों से पता चलता है कि उस समय के लोगो को अकगणित और रेखागणित का अच्छा ज्ञान था। वे लोग लिखना भी जानते थे। सिंधु-सभ्यतावालों को आकाश के ग्रह-नक्षत्र, औषधियों आदि का भी अच्छा ज्ञान रहा होगा।

आज से करीब साढ़े तीन हजार साल पहले हमारे देश मे आर्यलोग आए। आर्यलोग अपने साथ लोहे का ज्ञान भी ले आए। तब से लौहयुग का आरभ हुआ। आर्यों का मुख्य धर्म था यज्ञकर्म। कई प्रकार के यज्ञ होते थे। इनमे देवताओ के लिए आहुतियाँ दी जाती थी। आर्यलोग यज्ञ करके अपने देवताओ को खुश करने का प्रयत्न करते थे। इसलिए इन यज्ञो का उनके लिए बडा महत्त्व था।

आर्यों के जीवन तथा धर्म-कर्म के बारे में वेदों में जानकारी मिलती है। बाद मे इस देश मे फैल जाने पर आर्यों ने यज्ञकर्म के बारे मे बहुत सारे नियम बनाए। यज्ञ किस समय करने चाहिए, कैसे करने चाहिए, आदि के बारे मे उन्होने पुस्तके लिखी। इन्ही पुस्तको मे हमे उस समय के विज्ञान के बारे मे जानकारी मिलती है।

उस समय के लोग खुले आकाश के नीचे विचरण करते थे। इससे उन्हे सूरज, चाँद और सितारो की गतियो का अच्छा ज्ञान हो गया था। इन्ही गतियों के

आधार पर वे समय का हिसाब रखते थे। यज्ञ के लिए समय का बडा महत्त्व था। इसलिए उस समय ज्योतिष पर कुछ पुस्तकें लिखी गईं। उस समय की लिखी हुई इसी प्रकार की एक पुस्तक है **वेदाग-ज्योतिष**। यह पुस्तक **महात्मा लगध** ने लिखी थी।

यज्ञो के लिए नाना आकार-प्रकार की वेदियाँ बनती थी। यज्ञ कई प्रकार के होते थे। उसी प्रकार वेदियाँ भी कई प्रकार की होती थी। हर यज्ञ के लिए एक खास प्रकार की वेदी बनाई जाती थी। उस समय के लोगो का विश्वास था कि यदि यज्ञ की वेदी नियम के अनुसार न बने तो यज्ञ का फल नही मिलता, उलट हानि होती है। वेदियाँ रेखागणित के नियम के अनुसार बनती थी। इस प्रकार हमारे देश में रेखागणित के अध्ययन की शुरुआत हुई।

वेद थोडे पुराने पड गए, तो उन्हे समझने के लिए नए शास्त्रो का निर्माण किया गया। भाषा समझने के लिए व्याकरण की पुस्तके लिखी गईं। आकाश के ग्रह-नक्षत्रो की गतियो को समझने के लिए ज्योतिष की पुस्तके लिखी गईं। इसी प्रकार धर्म-कर्म के नियमो को समझाने के लिए भी पुस्तके लिखी गईं। धर्म-कर्म और यज्ञ आदि के नियमों को समझाने के लिए जो पुस्तके लिखी गईं उन्हे **कल्पसूत्र** कहते हैं। इस प्रकार छह शास्त्रो यानी विषयो पर पुस्तके लिखी गईं। इन छह शास्त्रो को वेदो के **अग** या **वेदाग** कहते हैं।

कल्पसूत्रो मे धर्म-कर्म के नियम बतलाए गए हैं।
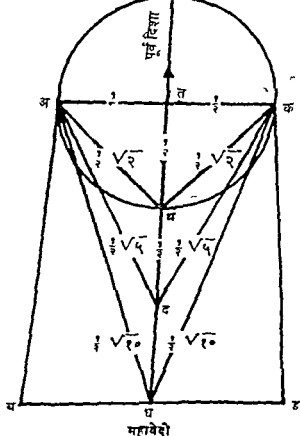
महावेदी

वेदियों में महावेदी को विशेष महत्त्व प्राप्त था। यह समद्विबाहु समलंब (चतुर्भुज) के आकार की होती थी (अबकड चतुर्भुज)। इसकी आधार रेखा 30 प्रक्रम (पग या कदम) होती थी, सामने की लंबाई 24 प्रक्रम और ऊँचाई 36 प्रक्रम। अक भुजा सदैव पूर्व की ओर रहती थी।

शुल्वसूत्रकार आपस्तम्ब ने महावेदी के निर्माण के चार तरीके दिए हैं जो शुल्व प्रमेय (पाइथेगोरस का प्रमेय) पर आधारित हैं। आज स्कूल का कोई भी विद्यार्थी इस वेदी को आसानी से बना सकता है। इस महावेदी की रचना में कई प्रकार के वर्गमूल भी प्राप्त किए जा सकते हैं जिन्हें ऊपर की आकृति में दिखाया गया है।

इन कल्पसूत्रों के एक प्रकरण मे यज्ञो की वेदियाँ बनाने के नियम दिए गए हैं। जिन प्रकरणों या पुस्तको मे वेदियो के निर्माण के नियम बताए गए हैं उन्हे **शुल्वसूत्र** कहते हैं। 'शुल्व' का अर्थ है रस्सी या रस्सी से मापना। वेदियो की लबाई, चौडाई और ऊँचाई को रस्सी या धागों से मापा जाता था, इसलिए जिन पुस्तकोंमे इनके बारे में नियम दिए गए उन्हे शुल्वसूत्रो का नाम मिला। दरअसल, इन्ही शुल्वसूत्रो मे हमारे देश का प्राचीन रेखागणित देखने को मिलता है।

पुराने जमाने मे वेदों के अध्ययन की कई शाखाएँ थी। हर शाखा ने अपने-अपने वेदाग-ग्रथो की रचना की। इस प्रकार, पुराने जमाने मे कई शुल्वसूत्र लिखे गए थे। पर आज वे सारे शुल्वसूत्र नही मिलते। आज केवल सात शुल्वसूत्र ही मिलते हैं। इनके नाम हैं बौधायन-शुल्वसूत्र, आपस्तब-शुल्वसूत्र, कात्यायन-शुल्वसूत्र, मानव-शुल्वसूत्र, मैत्रायण-शुल्वसूत्र, वाराह-शुल्वसूत्र और वाधुल-शुल्वसूत्र। बौधायन, आपस्तब, कात्यायन आदि इन शुल्वसूत्रो के लेखको के नाम हैं। इस प्रकार बौधायन, आपस्तब आदि हमारे देश के प्राचीन ज्यामितिकार हैं। इन शुल्वसूत्रो में वेदी बनाने के नियम लगभग एक से ही हैं। इन सात शुल्वसूत्रो में बौधायन का शुल्वसूत्र सभवत सबसे प्राचीन है। इसीलिए हमने इस प्रकरण के शीर्षक के लिए **बौधायन** नाम पसद किया है। बौधायन, कात्यायन आदि के जीवन के बारे मे हमे कोई जानकारी नही मिलती।

सवाल है कि ये शुल्वसूत्र कब लिखे गए ? आज से करीब साढ़े तीन हजार साल पहले वेदो की रचना हो चुकी थी। वेदो के चार-पाँच सौ साल बाद इन शुल्वसूत्रों की रचना हुई होगी। विद्वानो का अनुमान है कि आज से ढाई-तीन हजार साल पहले ये शुल्वसूत्र लिखे जा चुके थे। जो भी हो, इतना निश्चित है कि यूनान के प्रसिद्ध गणितज्ञ **पाइथेगोर** (ईसा पूर्व छठी सदी) और **यूक्लिद** (लगभग 300 ई पू) के पहले हमारे देश मे ये शुल्वसूत्र लिखे जा चुके थे। इन्ही शुल्वसूत्रों मे हमारे देश की प्राचीन ज्यामिति के दर्शन होते हैं। उस काल की इस ज्यामिति को हम **शुल्व-विज्ञान** कह सकते हैं।

आजकल का ज्यामिति शब्द यूनानी शब्द 'ज्यॉमिट्री' से बना है। पुराने जमाने मे हमारे देश में ज्यामिति को रेखागणित कहते थे। यूनानियो ने मिस्र और बेबीलोनवालों से ज्यामिति तथा ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। ईसा पूर्व सातवी-छठी शताब्दी के यूनानी विद्वान **थेल** और उनके शिष्य **पाइथेगोर** ने यूनान में ज्यामिति की नींव रखी थी। बाद मे, 300 ई पू के आसपास, यूनानी गणितज्ञ **यूक्लिद** ने ज्यामिति के बारे में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक लिखी। आज सारे ससार में जो ज्यामिति पढ़ाई जाती है, वह थोडे हेरफेर के साथ मूलत यूक्लिद की ही ज्यामिति है।

इसका मतलब यह नही है कि पुराने जमाने में हमारे देश में ज्यामिति या रेखागणित का अध्ययन नही होता था। हम बता चुके हैं कि सबसे पहले शुल्वसूत्रों में हमें

रेखागणित के नियम देखने को मिलते हैं। बाद में हमारे देश के आर्यभट, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि महान गणितज्ञों ने रेखागणित के बारे मे बहुत-कुछ लिखा। पर हमारे देश मे अंग्रेजी शिक्षा चालू हो जाने पर यूक्लिद की ज्यामिति पढ़ाई जाने लगी। असल मे, यूक्लिद की ज्यामिति में कई गुण हैं। उसमें धर्म-कर्म की बाते नही हैं। यूक्लिद ने तर्कशास्त्र के नियमों में बडे ही सुदर ढग से अपनी ज्यामिति को रचा है। यही कारण है कि आज भी सारे ससार में ज्यामिति का अध्ययन उसी ढग से होता है।

पर हमे यह नही भूलना चाहिए कि यूक्लिद के भी पहले हमारे देश में ज्यामिति का अध्ययन होता था और ज्यामिति के कई प्रसिद्ध नियम खोजे गए थे। उदाहरण के लिए, ज्यामिति का एक प्रसिद्ध प्रमेय लो। यह प्रमेय है—"किसी भी आयत के विकर्ण पर खीचा गया वर्ग क्षेत्रफल में उन दोनो वर्गों के योग के समान होता है जो दोनो भुजाओ पर खीचे जाएँ।"

यह नियम 'पाइथेगोर का नियम' के नाम से प्रसिद्ध है । पर ज्यामिति का यह प्रसिद्ध प्रमेय हमारे शुल्वसूत्रो मे भी देखने को मिलता है । इसी नियम को **बौधायन** ने निम्न प्रकार से उस समय की सस्कृत भाषा मे यो लिखा है—

"दीर्घचतुरश्रस्याक्नयारज्जु पार्श्वमानी तिर्य्यङ्मानी च यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभय करोति ।"

पाइथेगोर के प्रमेय का एक नतीजा यह निकलता है कि, किसी भी समकोण त्रिभुज मे इसके कर्ण की लबाई का वर्ग इसकी शेष दो भुजाओ की लबाइयों के वर्गों के योग के बराबर होता है । जैसे, किसी समकोण त्रिभुज की दो भुजाएँ क्रमश 3 और 4 लबाई की हैं और कर्ण की लबाई 5 है तो इन तीनो लबाइयो के बीच का सबध-सूत्र होगा $5^2 = 3^2 + 4^2$ । ज्यामिति मे यह सूत्र बडे उपयोग का है । आज हमे बताया जाता है कि इस सूत्र की खोज पाइथेगोर ने की थी । पर हम देखते हैं कि आज से करीब ढाई हजार साल पहले हमारे शुल्वसूत्रकार इस सूत्र की खोज कर चुके थे । शुल्वसूत्रों मे निम्न प्रकार के अनेक सबध-सूत्र देखने को मिलते हैं

$9^2 + 12^2 = 15^2$,

$12^2 + 16^2 = 20^2$, इत्यादि ।

पाइथेगोर का विश्वास था कि ससार की सारी वस्तुओं को सख्याओ मे व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने कहा था कि यह ससार सख्यामय है । वे तथा उनके शिष्य सख्याओ के भक्त थे । उनका खयाल

था कि सभी लबाइयो को ठीक-ठीक मापा जा सकता है। पर बाद मे उन्हे पता चला कि उनका यह खयाल सही नही है। इस बात को समझने के लिए एक ऐसा त्रिभुज लो जिसकी दो भुजाएँ एक-एक लबाई की हो। तब स्वय पाइथेगोर के नियम के अनुसार इस त्रिभुज के कर्ण की लबाई होगी, $1^2 + 1^2$ = '2 का वर्गमूल'। पर '2 का वर्गमूल' कितना होता है? दरअसल, 2 का ठीक-ठीक वर्गमूल जानना सभव नही हे। 'वर्गमूल 2' को आज हम $\sqrt{2}$ के रूप मे लिखते हैं। गणितज्ञो ने ऐसी सख्याओ को **अपरिमेय सख्याओं** का नाम दिया है।

कहते हैं कि पाइथेगोर को जव इन अपरिमेय-सख्याओ का पता चला तो उसने इनकी जानकारी को गुप्त रखा था। इनकी खोज होने पर उसने एक बैल की बलि भी दी थी! इन सख्याओ के बारे में यदि लोगो को पता चलता तो वे पाइथेगोर के सिद्धात का मजाक जो उडाते।

पर हमारे शुल्वसूत्रकारो को इन अपरिमेय सख्याओ का अच्छा ज्ञान था। वे वर्गमूल के लिए 'करणी' शब्द इस्तेमाल करते थे और $\sqrt{2}$ को 'करणी 2' के रूप मे लिखते थे। शुल्वसूत्र मे 'करणी 2' के लिए मान मिलता है

$$\sqrt{2} = 1 + \frac{1}{3} + \frac{1}{3 \times 4}$$

$$= 1\ 4142156863$$

आधुनिक गणना के अनुसार

$$\sqrt{2} = 1.41421356$$,

इस प्रकार, हम देखते हैं कि उस जमाने में हमारे देश के शुल्वसूत्रकारो को यूक्लिद की ज्यामिति के कई नियम ज्ञात थे । तरह-तरह के आकारो की वेदियाँ बनानी पडती थी । खास अवसरो के लिए खास प्रकार के यज्ञ करने के नियम थे । वेदियो के आकार निश्चित कर दिए गए थे । जैसे, गार्हपत्य यज्ञ के लिए वेदी का आकार वर्गाकार होता था। आहवनीय यज्ञ के लिए वेदी का आकार वृत्ताकार होता था । दक्षिण यज्ञ के लिए वेदी अर्धवृत्ताकार होती थी ।

कभी-कभी एक आकार की वेदी को दूसरे आकार की वेदी मे बदलना पडता था, पर क्षेत्रफल ज्यो-का-त्यो बनाए रखना पडता था। जैसे, वर्गाकार वेदी को वृत्ताकार वेदी मे बदलना । इस प्रकार, वेदियों के निर्माण के लिए शुल्वसूत्रो मे दर्जनो नियम दिए गए हैं । यहाँ एक बात हमें जान लेनी चाहिए कि शुल्वसूत्रकारो ने वेदियो की रचना के तरीके तो बतलाए हैं, किंतु रचना के इन तरीको के बारे मे उन्होने ज्यामिति के तार्किक नियमो की रचना नही की । कई बार हमे यह पता नही चलता कि उन्होने इन तरीको को कैसे खोज निकाला ।

लेकिन यूक्लिद की ज्यामिति तार्किक नियमो पर आधारित है । यूक्लिद की ज्यामिति शुद्ध ज्यामिति है । यही कारण है कि आज भी यूक्लिद की ज्यामिति ससार-भर के स्कूल-कॉलेजो मे पढाई जाती है । पर हमें

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यूक्लिद के पहले हमारे देश में ज्यामिति के कई महत्त्वपूर्ण नियम खोजे जा चुके थे और उस समय हमारे देश मे ज्यामिति शुल्व-विज्ञान के रूप मे जानी जाती थी ।

चरक

रोग उतने ही पुराने हैं, जितना कि मनुष्य। बल्कि हम यह भी कह सकते हैं कि रोग मनुष्य से भी अधिक प्राचीन हैं। मनुष्य से पहले हमारी इस धरनी पर बडे-बडे प्राणी विचरण करते थे। उन्हे भी रोग होते ही होगे।

बहुत पुराने जमाने के आदमी भी रोगो के इलाज के बारे मे थोडी-बहुत जानकारी रखते होगे। उस समय जगल की जडी-बूटियों और वनस्पतियो से आदमी का अधिक सबध था। इसलिए उसे इनके गुणो का भी ज्ञान हो गया था। रोगो के इलाज के लिए जडी-बूटियाँ बडी गुणकारी होती हैं। वैद्य का पेशा बहुत पुराना है। लेकिन पुराने जमाने की यह वैद्यकी एक प्रकार की ओझाई ही थी। उस समय के ओझा लोग जडी-बूटियो के साथ जादू-टोने का भी इस्तेमाल करते थे। अथर्ववेद मे इस प्रकार के इलाज के अनेक उदाहरण मिलते हैं। आजकल भी हमारे देहातो मे ओझाई का यह धधा चलता है।

हमारे यहाँ पुराने जमाने में ब्रह्मा को सृष्टि का जनक माना गया था। कथाएँ हैं कि ब्रह्मा ने आदमियो को पैदा किया। आदमी के साथ रोग पैदा हुए। फिर इन

रोगो के इलाज का ज्ञान भी पैदा करना जरूरी था। इसलिए पुराने ग्रथो मे लिखा हुआ मिलता है कि ब्रह्मा ही पहले वैद्य हुए। दरअसल, ब्रह्मा-जैसा कोई व्यक्ति नही था। जहाँ भी ब्रह्मा का नाम आए वहाँ समझ लेना चाहिए कि यह बहुत पुरानी बात है।

आयुर्वेद के पुराने ग्रथो मे कहानियाँ मिलती हैं कि ब्रह्मा ने आयुर्वेदशास्त्र का ज्ञान प्रजापति को बतलाया। प्रजापति से यह ज्ञान अश्विनीकुमारों ने सीखा। वैदिक साहित्य में अश्विनीकुमारो के चमत्कारिक इलाजो के बारे मे कई कथाएँ मिलती हैं। अश्विनीकुमारो से यह ज्ञान इद्र ने सीखा। इद्र आर्यों के सबसे बडे देवता थे। यहाँ तक इस कथा को काल्पनिक ही समझना चाहिए। इसके बाद आयुर्वेद के ग्रथो मे अलग-अलग कथाएँ मिलती हैं। **चरक-सहिता** ग्रथ मे आगे की कथा इस प्रकार है

आर्यों के जीवन मे रोग विघ्न डालने लगे। इससे ऋषियो को चिंता होने लगी। इस सकट पर विचार करने के लिए हिमालय की तराई में बहुत-से ऋषियो का एक सम्मेलन हुआ। इन ऋषियो ने **भरद्वाज** को अपना नेता चुना और आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भरद्वाज को इद्र के पास भेजा गया। भरद्वाज इद्र के पास गए। इद्र ने भरद्वाज को आयुर्वेद का ज्ञान बतलाया। बाद मे भरद्वाज ने यह ज्ञान **आत्रेय-पुनर्वसु** को बताया।

आगे आत्रेय-पुनर्वसु ने यह ज्ञान अपने छह शिष्यो को बताया। ये छह शिष्य थे—अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण

पराशर, हारीत और क्षारपाणि। बाद में इन शिष्यो ने अपने-अपने आयुर्वेद-ग्रथ लिखे। इनमें अग्निवेश का ग्रथ अधिक प्रसिद्ध हुआ। चरक-संहिता मे अग्निवेश ने आत्रेय के ज्ञान का ही सग्रह किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस आख्यान के अनुसार आयुर्वेद की परपरा बहुत प्राचीन है। इनमे भरद्वाज, पुनर्वसु और अग्निवेश को हम ऐतिहासिक व्यक्ति मान सकते हैं। भगवान बुद्ध के समय मे मगध देश मे जीवक नाम के एक प्रसिद्ध वैद्य हुए। आयुर्वेद का अध्ययन करने के लिए वे तक्षशिला गए थे। वहाँ उन्होने आचार्य आत्रेय के पास रहकर चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया था। आत्रेय-पुनर्वसु सभवत आज से लगभग ढाई हजार साल पहले हुए।

'चरक-संहिता' आयुर्वेदशास्त्र का सबसे पुराना ग्रथ है। दरअसल, इस ग्रथ मे आत्रेय के ज्ञान का सग्रह किया गया है। चरक-संहिता के प्रत्येक अध्याय के आरभ मे लिखा हुआ मिलता है, "भगवान आत्रेय ने इस प्रकार कहा।" कुछ अध्यायो के अत मे लिखा हुआ मिलता है कि, "इस तत्र यानी शास्त्र को आचार्य अग्निवेश ने तैयार किया, चरक ने इसका सपादन किया और दृढ़बल ने इसे पूरा किया।" इस प्रकार हम देखते हैं कि आज 'चरक-संहिता' नाम का जो ग्रथ मिलता है उसका ज्ञान मूलत आत्रेय-पुनर्वसु के उपदेशो पर आधारित है। अग्निवेश ने इस ज्ञान को ग्रथ का रूप दिया, चरक ने

इसमे सशोधन किया और बाद में दृढ़बल ने इसमें नए अध्याय जोडे ।

पर ग्रथ को 'चरक-संहिता' [illegible], इसलिए लोग इसे अब चरक की ही रचना मानते हैं । पर यह बात सही नही है । हमारे देश मे चरक नाम के अनेक व्यक्ति हुए हैं । अग्निवेश का आयुर्वेद-ज्ञान उनकी शिष्य-परपरा मे चलता रहा होगा । ये शिष्य एक स्थान से दूसरे स्थान मे चलते रहकर रोगियो का इलाज करते होगे । निरतर चलते रहने के कारण ही इस ज्ञान को 'चरक' का नाम दिया गया होगा । यह भी सभव है कि चरक नाम के किसी वैद्य ने ही इस ज्ञान का सशोधन एव सपादन किया हो ।

पर चरक कब हुए, कहाँ पैदा हुए, इसके बारे में हमे कोई जानकारी नही मिलती । एक चीनी बौद्ध-ग्रथ मे उल्लेख मिलता है कि चरक नाम के एक वैद्य राजा कनिष्क के दरबार मे रहते थे । कनिष्क का समय है ईसा की पहली शताब्दी । इसलिए हम मान सकते हैं कि इसा की पहली शताब्दी मे चरक ने इस संहिता का सपादन किया होगा । चरक-संहिता उत्तर भारत मे ही रची गई है, क्योंकि इसमे उत्तर भारत के ही स्थानो के उल्लेख मिलते हैं ।

असल मे हमे चरक-संहिता के बारे मे ही जानकारी प्राप्त करनी है । हमने यह भी देखा है कि यह ग्रथ किसी एक वैज्ञानिक की रचना नही है । इसमे आत्रेय-पुनर्वसु, अग्निवेश, चरक और दृढ़बल के ज्ञान का समावेश हुआ

है। दृढ़बल शायद कश्मीर के रहनेवाले थे और वे तीसरी या चौथी सदी मे हुए होगे।

चरक-संहिता आयुर्वेदशास्त्र का सबसे प्राचीन ग्रथ है। न केवल देश मे, बल्कि विदेश मे भी इसकी ख्याति फैल चुकी थी। अरबी भाषा मे भी इस ग्रथ का अनुवाद हुआ था। मध्य-एशिया के प्रसिद्ध यात्री अल्बेरूनी (ग्यारहवी सदी) लिखते हैं—"हिदुओ की एक पुस्तक है, जो चरक के नाम से प्रसिद्ध है। यह औषधि-विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानी जाती है। दतकथा है कि द्वापर-युग मे अग्निवेश नाम के एक ऋषि हुए, पर बाद मे उन्हे चरक कहा जाने लगा।" चरक-संहिता मे चीनी, यवन, पह्लव, शक, वाह्लिक आदि विदेशी जातियो का तथा उनके खान-पान आदि का भी विवरण मिलता है

'चरक-संहिता' सस्कृत भाषा मे है और गद्य तथा पद्य मे लिखी गई है। इसे आठ स्थानो और 120 अध्यायो मे बाँटा गया है। आठ स्थान और उनमे बतलाई गई बाते सक्षेप मे इस प्रकार हैं

1 सूत्रस्थान इसमे औषधि-विज्ञान, आहार, पथ्यापथ्य, विशेष रोग और शरीर तथा मन के रोगो की चिकित्सा का वर्णन है।

2 निदानस्थान रोग के कारणो का पता लगाने को निदान कहते हैं। इसमे आठ प्रमुख रोगो की जानकारी दी गई है।

3 विमानस्थान इस प्रकरण मे रुचिकर और शरीरवर्धक भोजन के बारे मे जानकारी है।

4 शारीरस्थान इस प्रकरण मे शरीर की रचना, गर्भ मे बालक का जन्म तथा विकास कैसे होता है, आदि बाते बतलाई गई हैं ।

5 इंद्रियस्थान इसमे रोगो की चिकित्सा का वर्णन है ।

6 चिकित्सास्थान इसमे खास रोगो के लिए कुछ खास इलाज बतलाए गए हैं ।

7-8 कल्पस्थान और सिद्धिस्थान इनमे छोटे-मोटे इलाजो के बारे मे जानकारी दी गई है ।

हमे यह जान लेना चाहिए कि चरक-संहिता मे शरीर की चिकित्सा अर्थात् काय-चिकित्सा का ही वर्णन है । इसमे शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) की जानकारी नही मिलती । शल्य-चिकित्सा के बारे मे जिस ग्रथ मे जानकारी मिलती है, उसका नाम है 'सुश्रुत-संहिता' । चरक-संहिता मे तबाकू, नाडी-परीक्षा और पारे की औषधियो के बारे मे भी कोई जानकारी नही मिलती ।
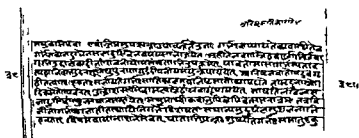
चरक संहिता की हस्तलिपि का एक पृष्ठ

पर चरक-सहिता मे उपचार और औषधियो के बारे मे अच्छी जानकारी दी गई है। इसलिए आज भी वैद्य लोग इस ग्रथ का इस्तेमाल करते हैं। माँ के गर्भ मे बालक किस प्रकार जन्म लेता है और धीरे-धीरे वह कैसे बढ़ता है, इसके बारे मे तो चरक ने बहुत ही अच्छी जानकारी दी है। चरक ने यह भी बताया है कि वात, पित्त और कफ मे से किसी एक या दो की कम-बेशी से शरीर मे रोग कैसे उत्पन्न होते हैं। चरक-संहिता में शरीर की केवल 360 हड्डियो का उल्लेख मिलता है। इसमे आँख के 96 रोग बतलाए गए हैं। औषधियाँ मुख्यत वनस्पति से तैयार की जाती थी। सभी औषधियो को 50 भागो मे बाँटा गया हे।

आजकल के विद्यार्थी जब चिकित्साशास्त्र का अध्ययन पूरा करते हैं तो उन्हे उपाधि लेते समय एक शपथ लेनी पडती है। इसे 'हिप्पोक्रेत की शपथ' कहते हैं। ईसा पूव पाँचवी शताब्दी मे यूनान मे हिप्पोक्रेत नाम के एक प्रसिद्ध वैद्य हुए थे। आत्रेय-पुनर्वसु और हिप्पोक्रेत का समय सभवत एक ही हे। हिप्पोक्रेत ने परपरा चलाई थी कि चिकित्सा का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी को शपथ लेनी चाहिए। पाश्चात्य पद्धति से आधुनिक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी आज भी हिप्पोक्रेत की यह शपथ लेते हैं।

हमारे देश मे भी चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थियो को शपथ दिलाने की परपरा रही है। चरक-संहिता मे वैद्य का व्यवसाय करनेवालो के लिए ये हिदायते दी गई हैं

"चिकित्सा-कार्य मे यश प्राप्त करने के लिए, कीर्तिलाभ के लिए, मरने के बाद स्वर्ग जाने के लिए तुम्हे गो-ब्राह्मणो का विशेष खयाल रखते हुए प्राणिमात्र के कल्याण की कामना करनी चाहिए। हर रोज, उठते-बैठते, तुम्हें पूरी शक्ति के साथ रोगियो को आरोग्यलाभ कराने का प्रयत्न करना चाहिए। रोगियो से किसी भी हालत मे शत्रुता नही रखनी चाहिए। रोगी के घर की बातो को बाहर नही बतलाना चाहिए। पंडित होने पर भी अपने ज्ञान के बारे मे बहुत डींग नही मारनी चाहिए। आयुर्वेद का पंडित होना आसान नही है, इसलिए हमेशा ज्ञान के सचय मे लगे रहना चाहिए। बुद्धिमानो के लिए सारा ससार ही गुरु है, शत्रु तो केवल मूर्खों के लिए हैं।" इत्यादि।

पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि चरक-संहिता मे केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए ही आयुर्वेद पढ़ने की अनुमति दी गई है। इससे पता चलता है कि उस जमाने मे जात-पाँत का बोलबाला था, शूद्रो को अस्पृश्य समझा जाता था और उनके रोगो के इलाज की कोई ठीक व्यवस्था नही थी। पर बाद के वैद्याचार्य इतने कट्टर नही थे। भावमिश्र ने स्पष्ट लिखा है कि शूद्रो को भी आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए।

चरक-संहिता पर बाद मे अनेक टीकाएँ लिखी गईं। नया कुछ नही जोड़ना और पुराने ग्रथो पर टीकाएँ लिखते रहना प्रगति का लक्षण नही है। बड़े खेद की बात है कि चरक-संहिता के बाद ऐसा उत्तम ग्रथ हमारे देश मे फिर

नही लिखा गया । सातवी या आठवी शताब्दी मे **वाग्भट** नाम के एक प्रसिद्ध वैद्याचाय ने **अष्टाग-सग्रह** नाम का ग्रथ लिखा । वह ग्रथ उत्तम होने पर भी पुरानपथी लोगो ने वाग्भट को 'कलियुग का चिकित्सक' घोषित कर दिया ! इस प्रकार की पुरानपथी या रूढ़िवादिता के कारण ही हमारे देश मे विज्ञान की प्रगति रुक गई थी । असल मे अपने समय मे चरक-संहिता, न केवल भारत मे, बल्कि ससार के चिकित्सा-साहित्य मे एक अद्भुत ग्रथ था । इसीलिए इस ग्रथ की देश-विदेश मे प्रसिद्धि हुई थी । पाश्चात्य विद्वान भी स्वीकार करते हैं कि चरक और सुश्रुत के समय मे भारतीय चिकित्साशास्त्र यूनानी चिकित्साशास्त्र से बहुत आगे था ।

कौमारभृत्य जीवक

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले का भारत। उस समय मगध देश पर राजा बिबसार का राज्य था। राजगृह नगर मगध देश की राजधानी था। यह नगर आजकल के पटना शहर के दक्षिण-पूर्व की ओर 80 किलोमीटर दूर था।

उसी समय मगध राज्य के उत्तर मे वज्जी गणसघ का शासन था। इस गणराज्य की राजधानी वैशाली नगरी मे थी। मगध देश पर एक राजा का शासन था, तो वैशाली के गणसघ पर, आजकल की तरह, जनता के प्रतिनिधियो का शासन था। वैशाली की जनता बडी सुखी थी। वैशाली मे बडे-बडे मकान थे, सुदर बगीचे थे। किंतु वैशाली की सबसे खूबसूरत चीज थी नगर-गणिका अबपाली। उस जमाने मे नगर की सबसे सुदर तरुणी को गणिका बनाया जाता था। गणिका नृत्य-गायन से नागरिकों का मनोरजन करती थी। उस जमाने मे गणिकाओ को बडा सम्मान प्राप्त था। राजे-महाराजे भी उनके दर्शन के लिए उतावले रहते थे।

वैशाली की नगरवधू अबपाली अपने रूप-सौंदर्य के लिए दूर-दूर तक मशहूर थी। एक बार का किस्सा है। राजगृह के कुछ नागरिक किसी काम से वैशाली आए। उन्होने अबपाली के रूप और वैभव को देखा। राजगृह लौटकर उन्होने राजा बिबसार से निवेदन किया—'महाराज, वैशाली की तरह हमारे नगर मे भी एक गणिका होनी चाहिए।'

राजा ने अपनी अनुमति दे दी। सालवती नाम की एक रूपवती कुमारी को राजगृह की नगर-गणिका चुना गया। थोडे ही दिनो मे अबपाली की तरह सालवती की कीर्ति भी दूर-दूर तक फैल गई। कुछ दिनो बाद उसके पेट मे गर्भ रह गया। उसने सोचा कि लोगो को यदि इस बात का पता चल जाएगा तो वे उसके पास नही आएँगे, उसका सत्कार नही करेगे। इसलिए उसने बीमारी का बहाना बनाया और लोगो से मिलना-जुलना बद कर दिया। कुछ दिनो बाद उसे एक बच्चा हुआ। उसने अपनी एक दासी को बुलाकर कहा—'इस बच्चे को सूप मे रखकर कूडे के ढेर पर फेंक आओ।' दासी ने वैसा ही किया।

उसी समय राजकुमार अभय उस रास्ते से गुजर रहा था। कूडे के ढेर पर उसकी नजर पडी तो उसने देखा कि वहाँ कौओ से घिरी हुई कोई चीज पडी हुई है। उसने अपने चाकरो से पूछा—'वहाँ क्या है?'

चाकरो ने पता लगाकर बताया—'बच्चा है देव। जिंदा है।'

राजकुमार ने आदेश दिया—'इसे हमारे अत पुर मे ले जाओ और दाइयो से कहो कि इसकी अच्छी तरह देखभाल करे।'

उस बालक का नाम रखा गया जीवक। राजकुमार ने उसका लालन-पालन किया था, इसलिए उसे **कौमारभृत्य जीवक** भी कहते हैं। यही बालक आगे जाकर एक प्रसिद्ध चिकित्सक बना।

बहुत प्राचीन काल मे मनुष्य जगली अवस्था मे रहता था। उस समय भी उसे रोगो का सामना करना पडता था। जगल की जडी-बूटियो से इलाज करना वह जानता था। जिन रोगो का इलाज सभव नही था उनको दूर करने के लिए वह देवी-देवताओ से प्रार्थना करता था। रोगो का इलाज करनेवाले वैद्यो का पेशा बहुत पुराना है। पुराने जमाने के वैद्य जडी-बूटियो से इलाज तो करते ही थे, जादू-टोने का भी इस्तेमाल करते थे। इसलिए पुराने जमाने की चिकित्सा एक प्रकार की ओझाई ही थी।

इस प्रकार की चिकित्सा के उल्लेख सबसे पहले अथर्ववेद में मिलते हैं। इन उल्लेखो से पता चलता है कि वेद लिखनेवाले ऋषि-मुनि भी रोगो के शिकार होते थे। उस जमाने मे मलेरिया जैसे बुखार को भी बहुत बडा रोग माना जाता था।

बाद मे हमारे देश मे चिकित्सा ने काफी उन्नति की। हमारे देश में आत्रेय, भृगु, चरक, सुश्रुत जैसे प्रसिद्ध चिकित्सक हुए। इन चिकित्सको के ग्रथ आज भी

मिलते हैं। जीवक का लिखा हुआ कोई ग्रथ आज नही मिलता। परतु जीवक के बारे मे बौद्ध-धर्म के ग्रथो मे काफी जानकारी मिलती है। इसका कारण यह है कि जीवक भगवान बुद्ध के समय मे जीवित थे। जीवक ने भगवान बुद्ध का भी इलाज किया था और उन्होने दूसरे बौद्ध भिक्षुओ को भी इलाज के तरीके बतलाए थे।

जीवक के समय मे यानी आज से ढाई हजार साल पहले तक्षशिला के विद्याकेद्र की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। तक्षशिला नगर आजकल के पाकिस्तान के रावलपिडी जिले मे था। इस नगर के खडहर आज भी मौजूद हैं। आर्यलोग जब भारत मे आए तो उन्होंने उत्तर-पश्चिम भारत की इस बस्ती की स्थापना की होगी। बाद मे आर्यलोग जब भारत के दूर-दूर के प्रदेशो मे जाकर बस गए तब भी वे पढ़ाई-लिखाई के लिए तक्षशिला पहुँचते थे। तक्षशिला उस समय ज्ञान-विज्ञान का सबसे बडा केद्र था।

जीवक जब बडे हुए तो उनमे तक्षशिला जाकर वैद्य बनने की इच्छा जगी। राजकुमार को बिना बताए ही वे तक्षशिला की ओर चल दिए। राजगृह से तक्षशिला बहुत दूर है। उस जमाने मे इस लबी यात्रा मे जीवक को क्या-क्या कष्ट झेलने पडे होगे, इसका सहज ही अदाज लगाया जा सकता है। नाना प्रकार के कष्ट सहकर जीवक तक्षशिला पहुँचे। वहाँ उन्होने एक आचार्य से वैद्यकी सीखना शुरू किया। उस जमाने के विद्यार्थी आचार्य की सेवा मे रहकर ज्ञान अर्जित करते थे। एक

उल्लेख के अनुसार प्रसिद्ध वैद्य आत्रेय-पुनर्वसु ही जीवक के गुरु थे।

जीवक ने अपने गुरु के चरणो मे बैठकर सात साल तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया। तब वे सोचने लगे कि कब इस पढ़ाई का अत होगा? जीवक ने यही सवाल अपने आचार्य से पूछा। आचार्य ने कहा—'एक खती ले लो और तक्षशिला के योजन-भर घेरे मे ढूँढ-ढूँढ कर ऐसी कोई जडी-बूटी या वनस्पति खोज लाओ जिसका किसी रोग मे इस्तेमाल न होता हो।'

जीवक ने तक्षशिला के योजन-भर घेरे मे ऐसी वनस्पति की खूब खोज की। लेकिन उन्हे ऐसी कोई वनस्पति नही मिली जिसका किसी-न-किसी रोग के इलाज मे इस्तेमाल न होता हो। जीवक ने आचार्य के पास आकर इस बात की सूचना दी। यह बात जानकर आचार्य बडे खुश हुए। उन्होने जीवक से कहा कि अब तुम चिकित्साशास्त्र मे पारगत हो गए। अब तुम्हारी पढ़ाई समाप्त हो गई है। अब तुम जाकर जनता की सेवा करो।

आचार्य का यह कथन ही उस जमाने का प्रमाणपत्र था। जीवक राजगृह की ओर वापस चल पडे। आचार्य ने शिष्य के खर्च की थोडी व्यवस्था कर दी थी। जीवक चलते-चलते साकेत (अयोध्या) पहुँच। वहाँ उन्हे पता चला कि एक सेठ की स्त्री सिर के भयानक दर्द से पीडित है। बडे-बडे वैद्यो ने उसका इलाज किया था, परतु कोई लाभ नही हुआ। जीवक सेठ के दरवाजे पर पहुँचे और

एक नौकर से बोले—सेठानी से जाकर कहो कि एक वैद्य आए हैं, आपको देखना चाहते हैं।

सेठानी को जब पता चला कि कच्ची उम्र का एक लडका उसका इलाज करने आया है, तो उसने नौकर से कहा—बडे-बडे वैद्य मेरा इलाज नही कर सके तो यह छोकरा क्या कर सकेगा ? रहने दो।

नौकर ने जाकर यह बात जब जीवक को बताई तो उन्होने कहा—जाओ, सेठानी से जाकर कहो कि वह मुझे तब तक कुछ न दे जब तक वह नीरोग न हो जाए।

सेठानी ने जीवक को भीतर बुलाया। जीवक ने अजलि-भर घी मँगवाया, उसमे कई तरह की दवाइयाँ मिलाईं और सेठानी को उतान सुलाकर उन्होने घी की वह दवाई उसके नाक मे डाल दी। नाक मे डाली हुई वह दवाई मुँह से बाहर निकल आई। जीवक की इसी एक खुराक से सेठानी का सात साल पुराना रोग ठीक हो गया। नीरोग होने पर सेठानी ने जीवक को बहुत-सा धन दिया। सेठ और उसकी बहू ने भी बहुत-सा धन दिया और यात्रा के लिए घोडागाडी भी दी।

जीवक राजगृह पहुँचे। वे राजकुमार अभय से मिले। जीवक ने राजमहल के पास ही अपने लिए एक मकान बनवाया और वे उसमें रहने लगे। जीवक के इलाजो के बारे में बौद्ध-धर्म के ग्रथो में कई दिलचस्प किस्से दिए हुए हैं। यहाँ पर हम दो-तीन किस्से दे रहे हैं।

उस समय राजा बिंबसार भगदर की भयानक बीमारी से पीडित थे। इस रोग मे गुदाद्वार के पास एक

फोडा होता है जो फूटने पर नासूर बन जाता है। खून इतना बहता है कि धोती भीग जाती है। महाराज की यह दशा देखकर उनकी रानियाँ उनका मजाक उडाती थी। महाराज बेचारे चुपचाप सुन लेते थे। एक दिन राजकुमार अभय ने राजा से कहा—हमारा जीवक बहुत अच्छा वैद्य है, महाराज का इलाज करेगा।

नख मे दवा लेकर जीवक महाराज के पास पहुँचे। उन्होने जख्म पर लेप लगा दिया। महाराज की बीमारी जाती रही। खुश होकर राजा बिबसार ने जीवक को बहुत सारा धन दिया।

राजगृह का एक सेठ सात साल से बीमार था। उसने बहुत-सा धन खर्च किया था। बडे-बडे वैद्यो ने उसका इलाज किया था, किंतु बीमारी नही गई। अत मे सेठ ने राजा से प्रार्थना की कि वे जीवक को उसका इलाज करने की अनुमति दें। जीवक ने जाकर सेठ को देखा। जीवक ने पूछा—क्या तुम सात महीने तक एक करवट लेटे रह सकते हो?

—हाँ।

—फिर सात महीने दूसरी करवट?

—हाँ।

—फिर सात महीने उतान?

—हाँ।

जीवक ने सेठ को एक चारपाई पर उतान लेटाकर मजबूती से बाँध दिया। फिर उन्होंने उसके कपाल को चीरकर उसमे से दो जतु निकाले। उसके बाद चमडी को

सीकर ऊपर से लेप लगा दिया। सात दिन गुजरे तो सेठ छटपटाने लगा। बोला—चाहे मरुँ या जीऊँ, अब मैं अधिक उतान नही लेट सकता।

बिना कुछ कहे जीवक ने उससे एक करवट लेटने को कहा। सात दिन गुजरने पर सेठ ने पुन पहले की तरह ही कहा। तो जीवक ने उसे दूसरी करवट लेटने को कहा। सेठ ने बडी मुश्किल से सात दिन और गुजारे। तब जीवक ने सेठ से कहा—अब तुम नीरोग हो। मैंने सात-सात महीनो का करार इसलिए करवा लिया था कि यदि मैं वैसा न करता तो तुम सात-सात दिन की इस मुश्किल को भी झेल नही पाते।

इस किस्से से पता चलता है कि जीवक, न केवल रोगी का इलाज करना जानते थे, बल्कि वे रोगी की मनोदशा को भी भलीभाँति पहचानते थे।

जीवक ने *काशी के राजा और अवती के राजा* प्रद्योत का भी इलाज किया था। कोई यह समझ न बैठे कि जीवक केवल राजा-महाराजाओ और सेठो का ही इलाज करते थे। जीवक ने धनी लोगो का इलाज करके बहुत-सा धन कमाया था, परतु इस धन का बहुत-सा हिस्सा उन्होने भिक्षुओ के सघ को दान दिया था। जीवक ने एक बार भगवान बुद्ध को जुलाब की एक दवाई देकर उनका इलाज किया था।

कौमारभृत्य जीवक अपने समय मे उत्तर भारत के सभवत सबसे बडे चिकित्सक थे। इसीलिए दूर-दूर के राजे-महाराजे उनसे अपना इलाज करवाने के लिए

उत्सुक रहते थे। जीवक भगवान बुद्ध के धर्म के अनुयायी थे। उन्होने बौद्धसघ मे चिकित्सा की परपरा को प्रोत्साहन दिया होगा। बाद मे जाकर हम देखते हैं कि बौद्ध-विहारो के साथ चिकित्सालय भी स्थापित किए जाते थे और बौद्ध साधु इन चिकित्सालयो मे बिना किसी भेदभाव के जनता की सेवा-सुश्रूषा करते थे। बौद्ध भिक्षु देश-विदेश मे जहाँ भी गए, भारतीय चिकित्सा का ज्ञान उनके साथ वहाँ-वहाँ गया। बौद्ध-धर्म मध्य-एशिया मे फैला तो वहाँ भारत का चिकित्साज्ञान भी फैला। मध्य-एशिया से पुराने जमाने की वैद्यकशास्त्र की हस्तलिखित पुस्तके मिली हैं। बौद्ध-धर्म चीन मे भी फैला। पुराने जमाने मे वहाँ के विहारो के साथ चिकित्सालय भी होते थे। चीन मे भारतीय चिकित्साज्ञान का बडा सम्मान था।

बौद्ध धर्म के साथ आयुर्वेद का ज्ञान श्रीलका मे भी फैला। आज भी वहाँ आयुर्वेद को बडा सम्मान प्राप्त है।

सुश्रुत

सभी जानते हैं कि आजकल शल्य-चिकित्सा (सर्जरी) ने कितनी अधिक उन्नति की है। कुछ भयानक रोगो का इलाज तो बिना शल्य-चिकित्सा के हो ही नही सकता। शल्य-चिकित्सा ने अब इतनी प्रगति की है कि एक आदमी के शरीर के अवयवो को दूसरे आदमी के शरीर मे स्थापित करने मे भी सफलता मिल रही है। शल्य-चिकित्सा के नए-नए तरीके खोजे जा रहे हैं। खास प्रकार की लेसर-किरणो से भी शल्य-चिकित्सा करने के प्रयोग हो रहे हैं।

शल्य-चिकित्सा की कहानी बहुत पुरानी है। हजारो साल पहले के वैद्य भी शल्य-चिकित्सा करना जानते थे। पुराने जमाने के वैद्य जडी-बूटियो से रोगो का इलाज करना तो जानते ही थे, वे चीर-फाड से भी रोगों का इलाज करते थे। इतना ही नही, पुराने जमाने मे हमारे देश के वैद्य प्लास्टिक-सर्जरी भी करते थे।

आज की तरह उस जमाने में भी आदमियों के दो दलो मे या दो सैन्यों में लडाइयाँ हुआ करती थी। किसी का हाथ कट जाता, किसी की नाक कट जाती, तो किसी

के बदन मे तीर या भाला घुस जाता । इसलिए चीर-फाड करके जख्मो का इलाज करना पडता था । उस जमाने के आदमी शिकार भी करते थे । इसलिए उस जमाने मे भी वैद्यो को जानवरो और आदमी के शरीर की रचना का अच्छा ज्ञान हो गया था। इन्ही सब कारणो से शल्य-चिकित्सा का विकास हुआ ।

किसी कारण से जब शरीर को पीडा होती है तो उसे **शल्य** कहते हैं । शस्त्रो या यत्रो का इस्तेमाल करके इस पीडा को दूर करने की क्रिया को शल्य-चिकित्सा कहते हैं । काँटे से काँटा निकालना एक प्रकार की शल्य-चिकित्सा ही है । धीरे-धीरे शल्य-चिकित्सा ने उन्नति की । इस शास्त्र ने इतनी अधिक उन्नति की कि आज से दो हजार साल पहले हमारे देश मे शल्य-चिकित्सा के रूप मे एक स्वतत्र विज्ञान ही अस्तित्व मे आ गया था ।

औषधि और उपचार से शरीर के रोगो का इलाज करने को काय-चिकित्सा कहते हैं । काय-चिकित्सा का सबसे पुराना और महत्त्वपूर्ण ग्रथ है 'चरक-संहिता' । शस्त्रो और यत्रो से रोगो का इलाज करने को शल्य-चिकित्सा कहते हैं । इस विज्ञान के बारे मे हमारे देश का सबसे पुराना एव प्रमुख ग्रथ है **सुश्रुत-संहिता** । इसी सुश्रुत-संहिता के बारे मे हमे जानकारी प्राप्त करनी है ।

चिकित्साशास्त्र का ज्ञान बहुत प्राचीन है । इसलिए पुराने जमाने के विद्वानो ने कल्पना की कि ब्रह्मा ने इस ज्ञान को जन्म दिया था । आगे कल्पना की गई कि ब्रह्मा ने यह ज्ञान प्रजापति को दिया। प्रजापति ने इसे

आश्विनीकुमारो को दिया। आश्विनीकुमारो ने इसे इंद्र को दिया। यहाँ तक चिकित्सा-ज्ञान मे काय-चिकित्सा और शल्य-चिकित्सा का भेद नही किया गया है।

पर इसके आगे चिकित्साशास्त्र की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक काय-चिकित्सा और दूसरी शल्य-चिकित्सा। 'चरक-संहिता' के अनुसार काय-चिकित्सको मे भरद्वाज, आत्रेय-पुनर्वसु, अग्निवेश आदि के नाम आते हैं। पर सुश्रुत-संहिता मे इंद्र के बाद **धन्वंतरि** का नाम आता है।

आदि धन्वंतरि
(12वीं सदी की प्रतिमा)

हमने देखा कि 'चरक-संहिता' आत्रेय-पुनर्वसु के उपदेशो पर आधारित है। अग्निवेश ने इसे तैयार किया, चरक ने इसका सपादन किया और दृढबल ने इसमे नई बातें जोडी। सुश्रुत-संहिता की योजना कुछ दूसरे प्रकार की है। इसमे धन्वतरि उपदेश देनेवाले हैं और प्रश्न करनेवाले तथा सुननेवाले हैं सुश्रुत। प्राचीन काल मे हमारे देश मे शल्य-चिकित्सा करनेवालो का एक सप्रदाय रहा होगा। शल्य-चिकित्सा करनेवालो को धन्वतरि कहा जाता था। सुश्रुत-संहिता में बताया गया है कि धन्वतरि काशी के राजा थे और इनका दूसरा नाम दिवोदास भी था। वेदो मे धन्वतरि का नाम नही मिलता।

जिस प्रकार हमे चरक के जीवन के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती, उसी प्रकार सुश्रुत के जीवन के बारे मे भी कोई ठोस जानकारी नही मिलती। कही-कही सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र बताया गया है। पर हमारे देश मे विश्वामित्र नाम के कई व्यक्ति हुए हैं। इनमे सुश्रुत के पिता कौन थे, यह बताना कठिन है।

हम बता ही चुके हैं कि सुश्रुत-संहिता मुख्यत शल्य-चिकित्सा का ग्रथ है। इसमे भी 120 अध्याय हैं। इनके अलावा, परिशिष्ट के रूप मे 'उत्तर-तत्र' है। चरक-संहिता मे उत्तर-पश्चिम भारत के स्थानो के उल्लेख मिलते हैं। पर सुश्रुत को लगभग सारे भारत का ज्ञान था। सुश्रुत-संहिता मे बौद्धधर्म के शब्द भी मिलते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि यह ग्रथ भगवान बुद्ध के

बाद लिखा गया। विद्वानो का अनुमान है कि यह ग्रथ ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी मे लिखा गया होगा। इतना निश्चित्त है कि चरक-संहिता के काफी बाद मे सुश्रुत-संहिता की रचना हुई है।

सुश्रुत शल्य चिकित्सा करते हुए (कल्पना चित्र)

सुश्रुत-संहिता के आरंभिक 120 अध्यायो मे शल्य-चिकित्सा की जानकारी है ओर उत्तर-तत्र मे काय-चिकित्सा के बारे मे जानकारी हे।

औषधियो से इलाज करने का ज्ञान चलते-फिरते भी प्राप्त किया जा सकता है। पर शल्य-चिकित्सा के लिए

ऐसा सभव नही है। शल्य-चिकित्सा के लिए औजार चाहिए, शल्य-चिकित्सा का अभ्यास करने के लिए चीर-फाड के तरीके सीखने की जरूरत होती है और अच्छे अस्पतालो का होना भी जरूरी है।

सुश्रुत-संहिता मे बतलाया गया है कि विद्यार्थी को पहले कुम्हडा, लौकी, तरबूज, पेठा, ककडी-जैसे फलो को काटकर छेद्यकर्म सीखना चाहिए। चमडे के किसी थैले मे या मशक मे पानी या कीचड भरकर भेद्यकर्म सीखना चाहिए। बाल लगे हुए किसी चमडे को खुरचने से लेख्यकर्म सीखा जा सकता है। मरे हुए जानवर की सिरा या कमल के नाल को काटकर वेद्यकर्म सीखना चाहिए। इसी प्रकार, पट्टियाँ बाँधने, सीने आदि के बारे मे भी अभ्यास के तरीके बतलाए गए हैं।

पर जब तक मनुष्य के शरीर पर चीर-फाड के प्रयोग न किए जाएँ, तब तक कोई भी व्यक्ति शल्य-चिकित्सा मे पारगत नही हो सकता। इसके लिए शव की चीर-फाड करना जरूरी है। सुश्रुत ने शव-परीक्षा करने के भी तरीके बतलाए हैं। सुश्रुत कहते हैं कि जो व्यक्ति इस प्रकार पूरा ज्ञान प्राप्त करता है, वह गलतियाँ नही करता। अधूरे ज्ञानवाले से ऐसे ही बचना चाहिए जैसे कि साँप से।

सुश्रुत ने अस्पतालो की व्यवस्था और साफ-सफाई के बारे मे अच्छी जानकारी दी हे। सुश्रुत-संहिता मे अस्पताल के लिए **व्रणितागार** शब्द मिलता है। सुश्रुत ने रोगी के बिस्तर, खान-पान और सफाई के बारे मे

अच्छी हिदायते दी हैं।

सुश्रुत-संहिता मे शल्य-चिकित्सा के यत्रों के बारे में जो जानकारी दी गई है, वह बडे महत्त्व की है। आज की तुलना मे उस समय के यत्र कुछ भोंडे प्रतीत होते हैं, पर हमे ध्यान मे रखना चाहिए कि ये यत्र दो हजार साल पहले के हैं। सुश्रुत ने 101 यत्रो की जानकारी दी है, पर यह भी बतलाया है कि सबसे मुख्य यत्र हाथ ही हैं।

इन यत्रो को, इनके उपयोग की दृष्टि से, छह मुख्य भागो मे बाँटा गया है। स्वस्तिकयत्र 24 प्रकार के होते थे। इनमे से कुछ जगली जानवरो के मुँह के आकार के होते थे और कुछ पक्षियो के मुँह के आकार के होते थे जैसे, सिहमुख, व्याघ्रमुख, मार्जारमुख, काकमुख, गृधमुख। इनसे हड्डियाँ निकाली जाती थी। सदशयत्रो

प्राचीन भारत के शल्य चिकित्सा के यत्र

से त्वचा, मास, सिरा आदि को निकाला जाता था। सदशयत्रो को सडसियाँ समझना चाहिए। तालयत्रो से कान और नाक की हड्डियाँ निकाली जाती थी। नाडीयत्रो से तरह-तरह के काम लिए जाते थे। शलाकायत्र 28 प्रकार की सलाइयाँ होती थी।

सुश्रुत-सँहिता मे जख्मो की सिलाई, जख्मो पर पट्टियाँ बाँधने और मरहम लगाने आदि के बारे मे अच्छी जानकारी दी गई है। बारीक सूत, सन, रेशम, बाल आदि के धागे इस्तेमाल करने को कहा गया है। इसी प्रकार, पट्टियाँ बाँधने के लिए कपास, सन, ऊन, रेशम, चीन देश का कपडा, छाल आदि का इस्तेमाल होता था।

पुराने जमाने मे शल्यकर्म का उपयोग मुख्यत लडाई मे घायल हुए सैनिको के लिए होता था। इसलिए उस जमाने के राजा अपने पास काय-चिकित्सक और शल्यकर्म विशारद (सर्जन) रखा करते थे। कहा गया है कि सुश्रुत को शल्य-चिकित्सा का उपदेश देनेवाले धन्वतरि काशी के राजा थे। सुश्रुत-सँहिता मे 'युक्तसेनीय' नाम का एक स्वतत्र अध्याय ही है। इसमे बताया गया है कि सैनिको की शल्य-चिकित्सा मे किन बातो का ध्यान रखना चाहिए। इसमे बताया गया है कि राजा को अपनी सेना के साथ वैद्य भी रखने चाहिए। शत्रु पानी, भोजन आदि को विषमय बना सकता है। इनकी छान-बीन करने के लिए सेना के साथ वैद्यो का होना जरूरी था।

प्लास्टिक-सर्जरी आधुनिक शल्य-चिकित्सा मानी

जाती है। किसी का चेहरा बिगड जाता है तो प्लास्टिक-सर्जरी की जाती है। स्त्रियाँ अपने चेहरो को अधिक सुदर बनाने के लिए भी प्लास्टिक-सर्जरी करवाती हैं। पाश्चात्य देशो के लिए प्लास्टिक-सर्जरी एक नई चीज है। अभी दो सौ साल पहले ईस्ट इंडिया कपनी के वैद्यो ने प्लास्टिक-सर्जरी की विद्या भारतीय वैद्यो से सीखी थी।

महाराष्ट्र के एक वैद्य द्वारा की गई नाक की प्लास्टिक सर्जरी का रेखाकन (1794 ई)

हमारे देश मे आज से दो हजार साल पहले भी प्लास्टिक-सर्जरी होती थी। पुराने जमाने मे अपराधियों

को जब दड दिया जाता था, तो अक्सर उनकी नाक काट दी जाती थी। इसलिए कुछ लोगों के लिए नई नाक लगवाना जरूरी हो जाता था। सुश्रुत-संहिता में नाक और ओठ की प्लास्टिक-सर्जरी का अच्छा विवरण दिया गया है। इसमे शरीर के किसी अन्य स्थान से चमडी काटकर नाक पर लगाई जाती थी। गाल पर से चमडी को नाक पर खीच कर भी नाक की प्लास्टिक-सर्जरी की जाती थी। इससे गाल पर चेहरा थोडा खराब तो हो जाता था, पर अपराधी को साबुत नाक मिल जाती थी।

सब बातो पर विचार करने से पता चलता है कि आज से दो हजार साल पहले हमारे देश मे शल्य-चिकित्सा ने बहुत उन्नति की थी।

सुश्रुत ने बताया है कि वैद्य को माता-पिता की तरह रोगी की सेवा करनी चाहिए। इस बात को एक श्लोक मे वे बडे ही सुदर ढग से कहते हैं

मातर पितर पुत्रान् बान्धवानपि चातुर।
अप्येतानभिशकेत वैद्ये विश्वासमेति च॥
विसृजत्यात्मनात्मान न चैन परिशकते।
तस्मात्पुत्रवदेवैन पालयेदातुर भिषक्॥

अर्थात्—

रोगी अपने माता-पिता, भाई और रिश्तेदारों को भी शका की दृष्टि से देख सकता है, परतु वह वैद्य मे पूरा विश्वास रखता है। वह अपने को वैद्य के हाथो मे सौंप देता है, वैद्य के प्रति जरा भी शका नही रखता। इसलिए वैद्य का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे रोगी की अपने

पुत्र की तरह देखभाल करे।

चरक-सहिता की तरह सुश्रुत-संहिता की ख्याति भी देश-विदेश मे फैली थी। नौवी-दसवी शताब्दी मे एक तरफ अरब देशो मे और दूसरी तरफ दक्षिण-पूर्व एशिया के देशो मे सुश्रुत-संहिता का प्रचार हो चुका था। आठवी शताब्दी मे सुश्रुत-संहिता का अरबी भाषा मे भी अनुवाद हुआ था। वहाँ यह 'किताब-ए-सुश्रुत' के नाम से प्रसिद्ध थी। ईरान के महान चिकित्सक अल्-राजी (850-932 ई) ने सुश्रुत के ग्रथ का अनेक बार उल्लेख किया है और उन्होने सुश्रुत को एक महान चिकित्सक माना है।

हमारे देश में सुश्रुत-संहिता पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। पर आगे जाकर हमारे देश मे इस विज्ञान ने बहुत उन्नति नही की। बाद मे वाग्भट ने अपने ग्रथ मे सुश्रुत के आधार पर ही शल्य-चिकित्सा के बारे मे जानकारी दी है। अब तो पाश्चात्य शल्य-चिकित्सा बहुत उन्नति कर चुकी है।

आर्यभट

अब धरती का मानव चाँद पर पहुँच गया है। आज ज्योतिष, गणित तथा तकनीकी ने बहुत उन्नति की है। मनुष्य चाँद पर पहुँचने के बाद अब दूसरे ग्रहो पर भी पहुँचने की कोशिश कर रहा है। आदमी ने इतनी उन्नति कैसे की ? जाहिर है कि यह सब दस या सौ साल मे नही हुआ है। हजारो सालो से आदमी आकाश के ग्रह-नक्षत्रो का अध्ययन करता आया है। पुराने जमाने के जिन विद्वानो ने आकाश का गहरा अध्ययन किया है उनमे हमारे देश के एक ज्योतिषी **आर्यभट** का स्थान बहुत ऊँचा है।*

पुराने जमाने मे ज्योतिष और गणित की पढ़ाई साथ-साथ होती थी। इसलिए हमारे देश की पुरानी पुस्तको मे ज्योतिष और गणित की बाते साथ-साथ बतलाई गई हैं। आर्यभट जितने बडे ज्योतिषी थे, उतने ही बडे गणितज्ञ भी थे। उन्होने **आर्यभटीय** नाम से एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक मे गणित के साथ-साथ

आर्यभट को बहुत से लोग आर्यभट्ट लिखते हैं। मगर यह गलत है। लोग सोचते हैं कि वे ब्राह्मण होने के कारण भट्ट ही होने चाहिए। मगर उन्होंने अपना नाम आर्यभट ही दिया है। दूसरे भारतीय ज्योतिषियों ने उन्हें आर्यभट ही लिखा है। भट शब्द का अर्थ है योद्धा।

ज्योतिष की भी चर्चा है । यह पुस्तक है तो छोटी, लेकिन इसमे आर्यभट ने गणित और ज्योतिष की वे सारी बातें लिख दी हैं जो उनके समय तक खोजी गई थी । उन्होने यह पुस्तक सस्कृत भाषा मे लिखी है ।

पुराने जमाने मे हमारे देश में ज्योतिष और गणित के ग्रथ पद्य मे लिखे जाते थे । इसका कारण यह है कि पद्य को आसानी से कठस्थ किया जा सकता है । आजकल जिस प्रकार विद्यार्थी फार्मूलो यानी सूत्रो को याद करते हैं, उसी प्रकार पुराने जमाने के विद्यार्थी कविता को कठस्थ कर लेते थे । आर्यभट की लिखी हुई आर्यभटीय पुस्तक भी कविता में ही है ।

आर्यभट ने अपनी पुस्तक मे क्या बाते लिखी हैं, यह जानने के पहले हम आर्यभट के बारे मे कुछ बाते जानेगे । आजकल बडे-बडे लोगो की जीवनियाँ लिखी जाती हैं, परतु पुराने जमाने मे हमारे देश मे जीवनियाँ लिखने का रिवाज नही था । पंडित लोग अपनी पुस्तको मे अपने बारे मे बहुत कम जानकारी देते थे । यही कारण है कि हम अपने प्राचीन वैज्ञानिको और विद्वानो के जीवन के बारे मे बहुत कम जानते हैं । आर्यभट की केवल एक पुस्तक मिलती है । इसी पुस्तक मे उन्होने अपने बारे मे दो-चार बातें लिख दी हैं ।

अपनी पुस्तक के एक श्लोक मे आर्यभट हमें बताते हैं कि उन्होंने कुसुमपुर शहर में इस पुस्तक की रचना की थी । कहाँ है यह कुसुमपुर शहर ? आज के पटना शहर को पुराने जमाने में पाटलिपुत्र कहते थे । इसी पाटलिपुत्र

का एक अन्य नाम कुसुमपुर भी था। अत हम कह सकते हैं कि आर्यभट पुराने पटना शहर के निवासी थे। कुछ विद्वानो के अनुसार, आर्यभट **अश्मक** जनपद के निवासी थे। यह अश्मक जनपद गोदावरी और नर्मदा नदियो के बीच का प्रदेश था। राजधानी पैठन मे थी।

आर्यभट अपनी पुस्तक के एक श्लोक मे बताते हैं कि यह पुस्तक उन्होंने 23 साल की आयु मे लिखी है। उस समय ईसवी सन का 499 साल चल रहा था। 499 से 23 घटा देने पर हमे आर्यभट का जन्म-वर्ष ज्ञात हो जाता है। अर्थात्, आर्यभट का जन्म 476 ई मे हुआ था। तब से आज तक लगभग डेढ हजार साल का लबा समय गुजर गया है। आर्यभट जब जीवित थे, तो चद्रगुप्त और समुद्रगुप्त-जैसे शासको का काल समाप्त हो चुका था और गुप्त साम्राज्य का वैभव फीका पडने लग गया था। उस समय उत्तर-पश्चिम भारत पर हूणो के हमले हो रहे थे।

आर्यभट के जीवन के बारे मे बस इतनी ही जानकारी मिलती है। उनके माता-पिता कौन थे, उनके गुरु कौन थे, वे कितने साल जीवित रहे, इत्यादि बातो के बारे मे हमे आज कुछ भी पता नही है। आज उनकी केवल एक ही पुस्तक प्राप्त है।

आर्यभट की **आर्यभटीय** पुस्तक पर 'गागर मे सागर भर देने' वाली कहावत लागू होती है। इस पुस्तक मे कुल मिलाकर 121 श्लोक हैं। पुस्तक चार भागों मे बाँटी गई है। ये चार भाग हैं—गीतिकापाद, गणितपाद काल-

क्रियापाद और गोलपाद ।

गीतिकापाद मे कुल 13 श्लोक हैं । पहले श्लोक मे मगलाचरण है । ये श्लोक गीतिका छद मे हैं, इसीलिए इस भाग को गीतिकापाद कहते हैं। इन श्लोको मे ज्योतिषशास्त्र की कुछ बुनियादी बातो की जानकारी दी गई है । इस पाद का दूसरा श्लोक बडे महत्त्व का है । इसमे आर्यभट ने गणना की एक नई पद्धति की जानकारी दी है ।

पद्य मे लिखी जानेवाली पुस्तको मे गणित के अको को लिखना सभव नही है । यदि सख्याओ को शब्दों में लिखा जाए तो पद्य बडे हो जाते हैं । ज्योतिषशास्त्र मे बडी-बडी सख्याएँ लिखनी पडती हैं । इसलिए सख्याओ को सक्षेप मे लिखने के लिए आर्यभट ने एक नई पद्धति का आविष्कार किया । अपने इसी अद्भुत आविष्कार को उन्होने एक श्लोक मे लिख दिया है ।

आर्यभट ने सस्कृत भाषा की वर्णमाला को लिया । इसमे जो स्वर हैं, उन्हे उन्होने अ = 1, इ = 100, उ + 10000, ओ = 100000000000000 जैसे शतगुणोत्तर मान दिए । फिर, क, ख, ग, ब, भ और म जैसे पचीस व्यजनो को क्रमश 1 से 25 तक की सख्याओ के मान दिए । इसके बाद य, र, ल, व, श, ष, स और ह व्यजनो को क्रमश 30 40, 50, 60, 70, 80, 90 और 100 के मान दिए । इस प्रकार, उन्होने वर्णमाला के सारे अक्षरो के लिए सख्यामान निश्चित कर दिए । अब किसी भी सख्या को अक्षरो मे लिखा जा सकता था ।

अको या सख्याओं को इस प्रकार अक्षरो मे लिखने की पद्धति को 'अक्षराक-पद्धति' कहते हैं। आर्यभट के लगभग एक हजार साल पहले यूनानी लोग अपनी लिपि की वर्णमाला से ही अको को लिखते थे। उनके [illegible] के लिए स्वतत्र चिह्न नही थे। पर हमारे देश मे बहुत प्राचीन काल से अको के लिए स्वतत्र चिह्न थे। आर्यभट के पहले ही शून्य की खोज हो चुकी थी। इस शून्य और 1 से 9 तक के अको की सहायता से सारी सख्याओ को लिखने की पद्धति का भी आविष्कार हो चुका था। पर आर्यभट को अपनी पुस्तक पद्य मे लिखनी थी। इसीलिए उन्होने एक नई अक्षराक-पद्धति का आविष्कार किया था। इस पद्धति मे बडी-बडी सख्याएँ छोटे-छोटे शब्दो से लिखी जा सकती थी, जैसे, ख्युघृ = 43,20,000। आर्यभट के बाद हमारे देश के दूसरे गणितज्ञो ने भी नई-नई अक्षराक-पद्धतियों का इस्तेमाल किया।

आर्यभटीय पुस्तक के गणितपाद मे कुल 30 श्लोक हैं। इतने ही श्लोको में आर्यभट ने अकगणित, बीजगणित और रेखागणित से सबंधित प्रमुख बातो को सक्षेप मे लिख दिया है। आर्यभट ने गणित के बारे मे जो बाते बतलाई हैं, वे हाईस्कूल की कक्षाओ तक पढ़ाई जाती हैं। परतु उनकी पुस्तक मे कुछ ऐसी भी बातें हैं जो आज कॉलेजो मे भी पढ़ाई जाती हैं। इनमें से कुछ बाते आर्यभट ने स्वय खोजी थी।

सभी जानते हैं कि वृत्त किसे कहते हैं और यह कैसा होता है। विद्यार्थी जानते हैं कि वृत्त मे त्रिज्या और परिधि

के बीच एक खास सबध होता है। किसी भी वृत्त की परिधि इसकी त्रिज्या या व्यास से कितने गुना बडी होती है ? विद्यार्थी जानते होगे कि वृत्त के व्यास की लंबाई को $\frac{22}{7}$ या 3 1416 से गुणा करें तो उस वृत्त की परिधि की लबाई ज्ञात हो जाती है। आज यह बात बडी आसान जान पडती है, परतु पुराने जमाने में वृत्त के व्यास तथा परिधि के सही-सही सबध को बहुत थोडे-से गणितज्ञ ही जान पाए थे। कारण यह है कि इन दोनो के बीच के सबध को एक निश्चित पूर्णांक या अपूर्णांक में व्यक्त नही किया जा सकता। इस सबध को एक लगभग सही सख्या मे ही व्यक्त किया जा सकता है। आजकल हम वृत्त के व्यास तथा परिधि के अनुपात को यूनानी अक्षर π (पाई) से लिखते हैं, अर्थात्, π = 22/7 या 3 1416। लेकिन यह एक काम-चलाऊ मान ही हुआ।

हमें यह जानकर अचरज होता है कि आज से डेढ़ हजार साल पहले आर्यभट ने इस अनुपात की खोज की थी। उन्होने लिखा है कि वृत्त का व्यास 20,000 हो तो उसकी परिधि 62,832 होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि वृत्त की $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{62832}{20000} = 3\ 1416$ । आर्यभट के पहले भारतीय गणितज्ञो को इस अनुपात का इतना सूक्ष्म मान ज्ञात नही था। उनके बाद के कुछ गणितज्ञो ने भी इतने सूक्ष्म मान का इस्तेमाल नही किया है। इससे पता चलता है कि आर्यभट एक उच्च कोटि के गणितज्ञ थे।

आज स्कूलो मे जो रेखागणित पढ़ाया जाता है, वह

यूनान के महान गणितज्ञ यूक्लिद की ज्यामिति पर आधारित है। लेकिन हमारे देश मे भी ज्यामिति का अध्ययन पुराने जमाने से होता आ रहा है। आर्यभट ने अपनी पुस्तक में रेखागणित से सबंधित कई बातें बतलाई हैं। पर जिस एक बात के लिए आर्यभट विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं, वह है **त्रिकोणमिति**। त्रिकोण की तीन भुजाओ और तीन कोणो के सबधो के बारे मे जो गणित रचा जाता है उसे त्रिकोणमिति कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन मे त्रिकोणमिति की बडी जरूरत होती है। आर्यभट ने त्रिकोणमिति मे एक नई पद्धति का आविष्कार किया था। इस नई पद्धति को **ज्या** या **भुजज्या** की पद्धति कहते हैं। आजकल स्कूल-कॉलेजो मे जो त्रिकोणमिति पढ़ाई जाती है वह आर्यभट की इसी पद्धति पर आधारित है। यूनान के गणितज्ञो को इस पद्धति का ज्ञान नही था। यह भारतीय आविष्कार पहले अरब देशो मे पहुँचा और उसके बाद यूरोप मे इसका प्रचार हुआ।

आर्यभट की इस पद्धति का प्रचार विदेशो मे कैसा हुआ, यह एक शब्द पर विचार करने से मालूम हो जाएगा। एक शब्द की यह मजेदार कहानी है। समकोण त्रिभुज की दो भुजाओ के अनुपात के लिए अग्रेजी का एक शब्द है—'साइन'। आज से डेढ़ हजार साल पहले हमारे देश में इसी के लिए शब्द था **ज्या** या **जीवा**। यकीन करना कठिन है, पर अग्रेजी का यह 'साइन' शब्द 'जीवा' शब्द से ही बना है। आठवी-नवी शताब्दी में अरबी विद्वान गणित और ज्योतिष के भारतीय ग्रथो का अरबी

भाषा मे अनुवाद कर रहे थे। उनके सामने सस्कृत का यह 'जीवा' शब्द आया, तो वे चक्कर मे पड गए। इस शब्द का अरबी मे अनुवाद न करके उन्होने इसे ज्यो-का-त्यो अपना लिया। अरबी लिपि में स्वरों के लिए अक्षर नही होते। इसलिए इस 'जीवा' शब्द को उन्होने 'ज-ब' के रूप मे लिखा।

ग्यारहवी शताब्दी में अरबी ग्रथो के यूरोप की लैटिन भाषा मे अनुवाद होने लगे थे। यूरोप के पडितो के सामने जब यह 'ज-ब' शब्द आया, तो वे भी भौंचक्के रह गए। वे नही जानते थे कि यह मूलत भारत की सस्कृत भाषा का शब्द है। उन्होने गलती से इसे अरबी भाषा का 'जेब' शब्द मान लिया, जिसका अर्थ होता है 'खीसा' या 'छाती'। इसलिए अनुवाद करते समय उन्होने इसके लिए लैटिन का शब्द चुना 'सिनुस्', जिसका अर्थ होता है 'छाती'। कहाँ सस्कृत का 'जीवा' शब्द और कहाँ छाती के अर्थवाला लैटिन का यह 'सिनुस्' शब्द! इसी 'सिनुस्' शब्द से आज की अग्रेजी का 'साइन' शब्द बना है। पर अग्रेजी के माध्यम से त्रिकोणमिति पढ़नेवाले आज के कितने विद्यार्थी जानते हैं कि यह 'साइन' शब्द और त्रिकोणमिति की आधुनिक विधि मूलत भारतीय आविष्कार हैं? भारतीय ज्योतिष और गणित के कई आविष्कार पहले अरब देशों मे पहुँचे और तदनतर यूरोप के देशो में उनका प्रचार हुआ था।

आर्यभट के समय मे दूरबीन जैसी कोई चीज नहीं थी। आँखो से जो और जितना कुछ आकाश में दिखाई

देता था उसी का अध्ययन होता था। फिर भी हमारे ज्योतिषियो ने आकाश के ग्रह-नक्षत्रो की गतिविधियो के बारे मे काफी बाते जान ली थी। आर्यभट की पुस्तक के कालक्रियापाद और गोलपाद भागो मे कालगणना तथा ज्योतिष के बारे मे जानकारी है। आर्यभट सही माने में एक वैज्ञानिक थे। उन्होंने अपनी पुस्तक में फिजूल की बाते बिलकुल नही लिखी हैं। उस समय के कुछ लोग मानते होगे कि ग्रहणों के समय राहु-केतु नाम के कोई राक्षस सूर्य और चद्र को खा जाते हैं। पर आर्यभट ने साफ शब्दो में लिखा है, कि ये सब झूठी बाते हैं। उन्होने लिखा कि पृथ्वी की छाया जब चद्र पर पडती है तो चद्रग्रहण होता है और चद्र की छाया जब पृथ्वी पर पडती है तो सूर्यग्रहण होता है। इस बात से पता चलता है कि आर्यभट अधविश्वासो मे यकीन नही करते थे। हमारे देश मे आकाश के ग्रह-नक्षत्रों के आधार पर आदमी का भाग्य बतलाने का धधा पहले भी चलता था और आज भी चलता है। पर आर्यभट ने अपनी पुस्तक मे ऐसी अधविश्वासी बातो का कोई जिक्र नही किया है।

हमारे देश मे आर्यभट के समय में, और बाद में भी सदियों तक, यह मान्यता प्रचलित थी कि पृथ्वी स्थिर है और समूचा खगोल इसकी परिक्रमा करता है। मगर आर्यभट ने स्पष्ट लिखा है कि पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती है, इसीलिए खगोल हमे घूमता दिखाई देता है।

आर्यभट की यह मान्यता सही थी फिर भी उनके

बाद के अनेक ज्योतिषियो ने इसे स्वीकार नही किया, ब्रह्मगुप्त-जैसे महान गणितज्ञ-ज्योतिषी ने भी नही। हाँ, आर्यभट ने यह नही कहा था कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है।

आर्यभट ने विज्ञान के अध्ययन की एक स्वस्थ परपरा को जन्म दिया था। उनके समय से हमारे देश में विज्ञान के एक नए युग का आरभ हुआ था। आर्यभट के बाद हमारे देश मे वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि महान वैज्ञानिक हुए। आर्यभट नाम के एक और ज्योतिषी हमारे देश में हुए थे। लेकिन उनका समय इस आर्यभट के बाद का है। उस दूसरे आर्यभट ने 'महासिद्धात' नामक ज्योतिष का एक ग्रथ लिखा है।

वराहमिहिर

ज्योतिषशास्त्र बहुत पुराना विषय है। हजारो साल पहले का मानव भी आकाश के चमकीले तारो को निहारता था। वह उन तक पहुँच नही सकता था, उनकी दूरियो को सही-सही जान नही सकता था। उनके भौतिक गुणधर्मों को समझ नही सकता था। किंतु वह उनकी गतियों को पहचान सकता था, उनकी गतियो का लेखा-जोखा रख सकता था।

पुराने जमाने के मानव ने धीरे-धीरे यह भी जाना कि सूरज, चाँद और सितारो की गतियों मे एक प्रकार की नियमितता है। उसने जाना कि चाँद की कलाएँ घटते-घटते एक दिन गायब हो जाती हैं। उसने जाना कि चाँद की कलाएँ बढ़ते-बढ़ते एक दिन पूरा चाँद बन जाती हैं। उसने जाना कि चाँद के पूरा गायब हो जाने या चाँद के पूरा प्रकट होने में एक निश्चित समय गुजरता है। यह काल लगभग स्थिर रहता है। इसके आधार पर समय का हिसाब रखा जाने लगा। इस समय के आधार पर शिकार करने अथवा फसल बोने या काटने का समय तय किया जाने लगा। धीरे-धीरे चाँद्र-पचाग बनने लगे।

उसने यह भी जाना कि सूरज पूर्व दिशा में हमेशा एक स्थान से उदित नही होता। लेखा-जोखा रखते-रखते उसने सूरज की गतियो को पहचाना। उसने जाना कि सूरज के पुन उसी स्थान से उदित होने मे जो अरसा गुजरता है, उसे एक वर्ष (सौरवर्ष) कहते हैं। इसी प्रकार उसने आकाश के प्रमुख तारो की गतियो को भी पहचाना। सूरज, ग्रह और चाँद आकाश के जिस पट्टे में यात्रा करते हैं, उसका बडा महत्त्व है। इस पट्टे को रविमार्ग या क्रातिवृत्त कहते हैं। पुराने जमाने के ज्योतिषियो ने इस क्रांतिवृत्त को 27 या 28 भागो मे बाँटा था। क्रांतिवृत्त के इन भागो को या इनके प्रमुख तारो को नक्षत्र कहते हैं। पुराने जमाने के ज्योतिषियो ने क्रांतिवृत्त में यात्रा करनेवाले सूरज, चाँद, ग्रहो और तारों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बाद मे क्रांतिवृत्त को 12 राशियों में बाँटा गया।

आज से करीब तीन हजार वर्ष पहले के हमारे ज्योतिषियों ने ज्योतिष के अध्ययन को बड़ा महत्त्व दिया था। वैदिक-काल के यज्ञ आदि कर्मों के लिए सही समय का जानना बड़ा जरूरी था। इसलिए उस जमाने के विद्वानो ने ज्योतिषशास्त्र का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया था। उस जमाने मे छह शास्त्रों का अध्ययन बड़े महत्त्व का माना जाता था। इन शास्त्रों को वेदांग कहा जाता है। इन छह वेदांगों में से एक है वेदांग-ज्योतिष। वेदांग-ज्योतिष पर लिखी हुई एक पुस्तक भी मिलती है। इस पुस्तक के रचयिता थे आचार्य लगध। यह पुस्तक

आज से लगभग ढाई हजार साल पहले लिखी गई थी ।

एक हजार साल का लबा अरसा गुजरा । आर्यभट का समय आया । इस बीच हमारे देश मे ज्योतिषशास्त्र पर कई महत्त्वपूर्ण ग्रथ लिखे गए होगे । पर आज वे ग्रथ नही मिलते । हाँ, दूसरे ग्रथो मे उस समय के ज्योतिष-शास्त्र के बारे मे छुटपुट उल्लेख अवश्य मिलते हैं । परतु हम निश्चित रूप से जानते हैं कि इस अरसे मे ज्योतिषशास्त्र के सिद्धात-ग्रथो की रचना हुई थी । इन्ही सिद्धात-ग्रथों के आधार पर वराहमिहिर ने अपना प्रसिद्ध **पचसिद्धातिका** ग्रथ लिखा था ।

वराहमिहिर और आर्यभट का समय लगभग एक ही है । ये दोनो ज्योतिषी 500 ई के आसपास जीवित थे । वराहमिहिर के आज कई ग्रथ मिलते हैं, परतु उनमे से किसी भी ग्रथ मे उनके जीवन के बारे मे खास जानकारी नही मिलती । ज्योतिषी जब अपने ग्रथ को लिखना आरभ करता है तो उसे गणना के लिए किसी-न-किसी सवत् का चुनाव करना पडता है और यह लिखना पडता है कि उसने अमुक साल से गणनाएँ आरभ की हैं । वराहमिहिर ने अपने पचसिद्धांतिका ग्रथ मे गणितारभ का वर्ष शक-सवत् 427 दिया है । शक-सवत् मे 78 साल जोडने से ईसवी-सन् का साल मिलता है । इसका अर्थ यह हुआ कि वराह ने अपना यह ग्रथ 505 ई मे लिखा था । हम जानते हैं कि आर्यभट ने अपना आर्यभटीय ग्रथ 23 साल की आयु मे 499 ई मे लिखा था ।

हम नही जानते कि वराह का जन्म किस साल हुआ था और मृत्यु ठीक किस साल हुई। हाँ, बाद के एक उल्लेख से यह जानकारी मिलती है कि वराह की मृत्यु 587 ई मे हुई थी। अत वराह का जीवनकाल हम ईसा की छठी शताब्दी मान सकते हैं।

वराह कहाँ पैदा हुए थे, इसके बारे मे भी हमे कोई जानकारी नही मिलती। दतकथाओं में कहा गया है कि कालिदास आदि की तरह वराहमिहिर भी विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नो मे से एक थे। पर इतिहास मे दतकथाओ के इस विक्रमादित्य के बारे मे हमे कोई स्पष्ट जानकारी नही मिलती। हाँ, प्रसिद्ध गुप्त-सम्राट चद्रगुप्त द्वितीय ने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। 'विक्रमादित्य' उपाधिवाले और भी कई शासक हुए।

वराहमिहिर के पिता का नाम आदित्यदास था और पिता से ही उन्होने ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। वराह ज्ञानार्जन के बाद जीविका के लिए अवतीदेश (मालवा) चले गए थे। उस समय उज्जयिनी (उज्जैन) अवतीदेश की राजधानी थी। वराह स्वय लिखते हैं कि कांपिल्लक नगर मे उन्हे सूर्य का वरदान प्राप्त हुआ था। यह कांपिल्लक नगर उज्जयिनी के आसपास रहा होगा। वराह सूर्य के उपासक थे।

वराहमिहिर ने ज्योतिषशास्त्र की कई शाखाओं पर ग्रथ रचे हैं। आज उनके जो ग्रथ मिलते हैं, वे ये हैं—लघुजातक, बृहज्जातक, विवाह-पटल, बृहत्संहिता,

योगयात्रा और पचसिद्धांतिका। ये सभी ग्रथ सस्कृत भाषा में हैं।

'पचसिद्धांतिका' का अर्थ है पाँच सिद्धात। वराह ने सबसे पहले इसी ग्रथ को लिखा था। जिन ग्रथो में ज्योतिष व गणित के बारे मे बुनियादी एव वैज्ञानिक बातो की जानकारी दी जाती है उन्हे सिद्धात-ग्रथ कहते हैं। वराह के पचसिद्धांतिका ग्रथ मे जो बातें हैं वे मूलत उनकी अपनी खोजी हुई नही हैं। बात यह है कि वराह के पहले हमारे देश मे ज्योतिष के पाँच सिद्धातग्रथ रचे जा चुके थे। ये पाँच सिद्धात हैं—पितामह-सिद्धात, वसिष्ठ-सिद्धात, रोमक-सिद्धात, पुलिश-सिद्धात और सूर्य-सिद्धात।

वराह के पहले हमारे देश मे इन पाँच सिद्धातों के अनुसार ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन होता था। वराह ने पचसिद्धांतिका ग्रथ मे इन्ही पुराने पाँच सिद्धातो की जानकारी दी है। इस जानकारी से पता चलता है कि रोमक और पुलिश सिद्धात पाश्चात्य ज्योतिष पर आधारित थे।

भारत पर सिकदर की चढ़ाई के बाद भारतीय पंडित यूनानी ज्योतिष के सपर्क मे आए थे। यूनान मे भी ज्योतिषशास्त्र ने खूब उन्नति की थी। वहाँ ईसा की दूसरी शताब्दी मे तालेमी नाम के एक बहुत बडे ज्योतिषी हुए थे। तालेमी ने भूगोल की अपनी पुस्तक में भारत के बारे में कुछ जानकारी दी है। ईसा की आरंभिक सदियों में यूनानी और भारतीय पंडित एक-दूसरे के

ज्ञान-विज्ञान से भलीभाँति परिचित थे। इसीलिए पाश्चात्य ज्योतिष की अच्छी बातों को लेकर भारतीय ज्योतिषियों ने रोमक व पुलिश सिद्धात बनाए थे।

वराहमिहिर ने अपने ग्रथ मे जिन पुराने पाँच सिद्धात-ग्रथो की जानकारी दी है, वे आजकल नही मिलते। वराह ने अपने ग्रथ मे इन सिद्धात-ग्रथो की जानकारी देकर हमारा बडा उपकार किया है। सिद्धात-ग्रथ आज भी मिलते हैं, परतु ये ग्रथ वराह के बाद के रचे हुए हैं। पुराने सिद्धात-ग्रथ और वराह के बाद के लिखे गए सिद्धात-ग्रथो की बातो मे समानता नही है।

कुछ विद्वानो का मत है कि वराह ने यूनान, रोम आदि पश्चिम के देशो की यात्रा करके वहाँ के ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त किया था। यह भी सभव है कि उन्हे भारत मे ही किसी यूनानी विद्वान से पाश्चात्य ज्योतिष की जानकारी मिली हो। पुराने जमाने मे भी ज्ञान-विज्ञान का खूब आदान-प्रदान होता था। वराह ने स्वीकार किया है कि यूनानी ज्योतिष भी उच्च कोटि का है। वराह के ग्रथो में कई यूनानी शब्द मिलते हैं जैसे, क्रिय, ताबुरि, जितुम, लेय, कौर्प्य, हेलि, होरा, आपोक्लिम, हिबुक, केंद्र आदि।

वराह का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रथ है *बृहत्सहिता*। यह ग्रथ अपने समय का ज्ञानकोश है। इसमे ज्योतिष की तो चर्चा है ही, अन्य विद्याओ के बारे मे भी जानकारी है। इसमे ज्योतिष से सबंधित जो जानकारी है वह अब पुरानी पड गई है। इतिहास की दृष्टि से ही अब उन बातों

का महत्त्व है। पर इस ग्रथ की दूसरी बाते बडे महत्त्व की हैं। इस ग्रथ मे उस समय की जनता, उनके रीति-रिवाज, राज्य और जनपद, नदी और पर्वत, खेती के तरीके, मौसम, वास्तुकला, मूर्तिकला आदि के बारे मे बहुत सारी बाते दी गई हैं। कई विद्वानो ने वराहमिहिर के समय के ही महाकवि कालिदास के ग्रथो के आधार पर उस समय की परिस्थितियो के बारे मे बडे-बडे ग्रथ लिखे हैं। वराह के ग्रथों में भी उस समय की सामाजिक परिस्थितियो के बारे में काफी जानकारी मिलती है। वराह के बृहत्संहिता ग्रथ के आधार पर कुछ लोगो ने उस समय की सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करने का प्रयास शुरू किया है। असल मे यह काम बडे महत्त्व का है। वराह के इस ग्रथ मे बहुत सारी जानकारी है, इसीलिए बाद के ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदि ज्योतिषियो ने वराह की खूब स्तुति की है।

आर्यभट शुद्ध ज्योतिषी थे। उन्होने अपनी पुस्तक में केवल गणित और ज्योतिष का ही विवरण दिया है। पर वराहमिहिर की बात दूसरी है। वराह के ग्रथो मे गणित की चर्चा बहुत कम है, पर फलित-ज्योतिष की बहुत अधिक। जन्मकुडली आदि बनाने की विद्या को **होराशास्त्र** कहते हैं। वराह ने अपना **बृहज्जातक** ग्रथ इसी शास्त्र पर लिखा है। **लघुजातक** पुस्तक इस बृहज्जातक का संक्षिप्त रूप है। वराह का **विवाह-पटल** ग्रथ भी फलित-ज्योतिष से संबंधित है। **योग-यात्रा** पुस्तक में वराह ने बतलाया है कि यात्रा पर निकलते

समय कोन-सी बाते शुभ होती हैं और कौन-सी अशुभ ।

हमारे देश मे ऐसे ढेर सारे ज्योतिषी हैं जो ज्योतिष की पुरानी पोथियो के आधार पर भोली-भाली जनता को उनका 'भाग्य' बता कर अपना पेट पालते हैं। ऐसे ज्योतिषी वराह को प्राचीन भारत का सबसे बडा ज्योतिषी मानते हैं । कारण यह हे कि वराह की पुस्तको मे फलित-ज्योतिष के बारे मे बहुत सारी जानकारी मिलती है । होना तो यह चाहिए था कि वराह की अच्छी बातो को ग्रहण कर लिया जाता ओर अधविश्वासी बातो को छोड दिया जाता ।

पृथ्वी की एक खास प्रकार की गति, जिसे अयन-चलन कहते हैं, के कारण ॠतुएँ पीछे सरक जाती हैं । वराह को इस अयन-गति का अच्छा ज्ञान था। वे जानते थे कि गणित द्वारा की गई गणनाओ मे और ग्रह-नक्षत्रो की प्रत्यक्ष स्थिति मे, इस अयन-चलन के कारण, अतर पडता जाता है । इसलिए उन्होने आगे के ज्योतिषियो को हिदायत दे रखी थी कि समय-समय पर पचाग मे सुधार करते रहना चाहिए। पर बाद के ज्योतिषियो ने उनके इस अच्छे सुझाव की उपेक्षा की । परिणाम यह हुआ कि पचाग ओर ॠतुओ मे अतर बढ़ता ही गया। पचाग पुरानी गणना-पद्धतियो पर बनते रहे । अभी कुछ दशक पहले स्वतत्र भारत की सरकार ने जब पचाग मे सुधार करने की एक योजना बनाई, तभी एक नया राष्ट्रीय-पचाग बना है ।

हमारे देश मे वराहमिहिर के ग्रथो की बडी प्रसिद्धि

रही है। दसवी शताब्दी के एक विद्वान ज्योतिषी भट्टोत्पल के वराह के ग्रथो पर टीकाएँ लिखी, तो वराह के ग्रथो को और भी प्रसिद्धि मिली। ग्यारहवी शताब्दी के प्रथम चरण मे मध्य-एशिया का एक प्रसिद्ध विद्वान अल्बेरूनी भारत-यात्रा पर आया था। वह ज्योतिषशास्त्र का पंडित था और सस्कृत भाषा भी जानता था। अल्बेरूनी ने भारत के बारे मे एक ग्रथ लिखा है। इस ग्रथ मे भारतीय ज्योतिष, विशेषत वराहमिहिर के बारे मे अच्छी जानकारी मिलती है। अल्बेरूनी ने वराह के कुछ ग्रथो का अरबी भाषा मे अनुवाद भी किया था।

आज वराह की अधिकाश बाते पुरानी पड गई हैं। पर हमारे देश के प्राचीन ज्योतिष एव जनजीवन के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए वराह के ग्रथो का अध्ययन जरूरी है। वराह के समय मे हमारा ज्योतिष-ज्ञान किसी भी अन्य देश के ज्योतिष-ज्ञान से कम नही था। पर बाद मे हमारे देश के ज्योतिषी लकीर के फकीर बनते गए। वराह की तरह बाद के ज्योतिषी भी पाश्चात्य ज्योतिष को ग्रहण करते रहते, तो हम ज्योतिष-ज्ञान मे इतने पीछे नही रहते।

ब्रह्मगुप्त

आर्यभट से लेकर भास्कराचार्य (1150 ई) तक हमारे देश मे विज्ञान की खूब उन्नति हुई। बीच की छह सदियो मे हमारे देश मे बडे-बडे गणितज्ञ और ज्योतिषी हुए। इनमे ब्रह्मगुप्त का स्थान सबसे ऊँचा है। ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी भी थे, पर गणितज्ञ के रूप मे वे अधिक प्रसिद्ध हैं। आज उनके दो ग्रथ मिलते है एक ब्राह्मस्फुट-सिद्धात और दूसरा खडखाद्य। अरबो को भारतीय ज्योतिष और गणित का ज्ञान पहले-पहले ब्रह्मगुप्त के इन्ही दो ग्रथो से हुआ था।

ब्रह्मगुप्त का जन्म 598 ई में हुआ था। उस समय तक शक्तिशाली गुप्त-साम्राज्य टूट चुका था। हूणो के हमलो से देश की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। देश कई छोटे-छोटे राज्यो मे बँटा हुआ था। पर ब्रह्मगुप्त के बचपन मे ही हर्षवर्धन ने उत्तर भारत मे एक विशाल राज्य खडा कर लिया था। ब्रह्मगुप्त, हर्षवर्धन और सस्कृत के प्रख्यात लेखक बाणभट्ट समकालीन थे।

ब्रह्मगुप्त अपने 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' मे जानकारी देते हैं कि उन्होने यह ग्रथ शक सवत् 550, अर्थात् 628

ई मे लिखा। उस समय उनकी आयु 30 साल की थी। ब्रह्मगुप्त भिन्नमाल के निवासी थे। उस समय यह भिन्नमाल नगरी उत्तर गुजरात की राजधानी थी। राजस्थान के जालौर जिले मे आज जो भीनमाल नामक गाँव है, वही पुराना भिन्नमाल है। ब्रह्मगुप्त के समय मे यहाँ चापवश के व्याध्रमुख राजा का शासन था।

ब्रह्मगुप्त के पिता का नाम जिष्णुगुप्त था। ब्रह्मगुप्त के जीवन के बारे मे इससे अधिक जानकारी हमे नही मिलती। भिन्नमाल के निवासी होने के कारण ब्रह्मगुप्त **भिन्नमालकाचार्य** के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे।

ब्रह्मगुप्त के पहले हमारे देश मे ज्योतिषशास्त्र के पाँच सिद्धात-ग्रथ प्रसिद्ध थे। वराहमिहिर ने अपने 'पचसिद्धांतिका' ग्रथ मे इन पाँच सिद्धातो की जानकारी दी है। इनमे एक था 'ब्रह्मसिद्धात'। ब्रह्मसिद्धात की बाते पुरानी पड गई थीं। ब्रह्मगुप्त स्वय वेधकर्ता थे। उन्होने जाना कि इस पुराने सिद्धात से काम नहीं बनता। इसलिए उन्होने नया सिद्धात लिखा। 'स्फुट' का अर्थ होता है फैलाया हुआ या दुरुस्त किया हुआ। इसीलिए ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रथ को 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धात' का नाम दिया।

ज्योतिष और गणित के अन्य प्राचीन ग्रथों की तरह ब्राह्मस्फुट-सिद्धात भी पद्य मे है। यह ग्रथ आर्या छद में लिखा गया है और 25 अध्यायों में बँटा हुआ है। आरभ के कुछ अध्यायों मे ज्योतिष की चर्चा है। फिर

गणितशास्त्र के विषय आरभ होते हैं। गणिताध्याय मे पाटीगणित अर्थात् अकगणित की चर्चा है। ब्रह्मगुप्त ने इसमे अकगणित के सभी परिकर्मों की जानकारी दी है।

ब्रह्मगुप्त ने शून्य सबधी गणित के बारे मे भी लिखा है। आज से दो हजार साल पहले हमारे देश में शून्य तथा इस पर आधारित स्थानमान अकपद्धति का आविष्कार हो चुका था। पर गणित और दैनंदिन व्यवहार मे इसका इस्तेमाल होने मे कुछ समय लगा। ब्रह्मगुप्त के समय के शिलालेखो मे पहले-पहल शून्य का प्रयोग देखने को मिलता है। ब्रह्मगुप्त ने शून्य के गणित की अच्छी चर्चा की है। पर उन्होने जो यह लिखा, कि शून्य से भाग देने पर परिणाम शून्य होता हे, ठीक नही है। आज हम जानते हैं कि यह परिणाम कुछ भी हो सकता है।

बीजगणित बडे महत्त्व का विषय है। बीजगणित के बारे मे ब्रह्मगुप्त के पहले के ग्रथो मे थोडी चर्चा देखने को मिलती है। पर ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रथ मे बीजगणित के बारे मे एक स्वतत्र अध्याय ही लिखा है। ब्रह्मगुप्त ने बीजगणित को कुट्टक का नाम दिया और कुट्टकाध्याय लिखा। उनके ग्रथ मे बीजगणित शब्द नही मिलता। ब्रह्मगुप्त की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने बीजगणित का इस्तेमाल ज्योतिष के सवाल हल करने मे किया। इससे ज्योतिष के सवाल हल करने मे बडी आसानी हुई।

यूनानी गणितज्ञो ने रेखागणित का खूब विकास

किया था। पर बीजगणित मे वे पिछडे हुए थे। बीजगणित के सवाल भी वे रेखागणित की सहायता से हल करते थे। उनकी ज्योतिष सबधी गणनाएँ भी ज्यामिति पर आधारित थी। भारत मे ब्रह्मगुप्त पहले गणितज्ञ थे जिन्होने बीजगणित को आगे बढ़ाया और ज्योतिष की गणनाओ मे इसका इस्तेमाल किया। वे लिखते हैं—जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश तारों की रोशनी को फीका बना देता है, उसी प्रकार कुट्टक यानी बीजगणित जाननेवाला और उसका इस्तेमाल करनेवाला गणितज्ञ दूसरे ज्योतिषियो को पछाड देता है।

ब्रह्मगुप्त ने समीकरणो के बारे मे नए हल सुझाए हैं। पर वृत्त की परिधि और व्यास के अनुपात के बारे मे ब्रह्मगुप्त का ज्ञान अधूरा था। उन्होने यह अनुपात '10 का वर्गमूल' बताया हे। पर हम जानते हैं कि ब्रह्मगुप्त के पहले आर्यभट ने इस अनुपात के लिए अधिक सूक्ष्म मान दिया था।

फिर भी हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि ब्रह्मगुप्त ने भारतीय गणितशास्त्र को सर्वोच्च शिखर तक पहुँचा दिया था। यही कारण है कि बाद के महान गणितज्ञ एव ज्योतिषी भास्कराचार्य ने ब्रह्मगुप्त की भूरि-भूरि प्रशसा की है और उन्हे 'गणकचक्र-चूडामणि' कहा है।

हम बता आए हैं कि पुराने सिद्धात मे सुधार करने के लिए ब्रह्मगुप्त ने अपने ग्रथ की रचना की थी। ब्रह्मगुप्त सही माने मे ज्योतिषी थे। उन्होने ज्योतिष के

कुछ नए यत्रो का आविष्कार किया। इन यत्रों की मदद से उन्होने स्वय वेध किए अर्थात् ग्रह और तारो की गति-स्थितियो का अध्ययन किया। उन्होने जाना कि पुरानी गणनाओ से इन नई गति-स्थितियों का मेल नही बैठता। इसीलिए उन्होने नई गणनाओ के आधार पर अपना ग्रथ लिखा था।

लेकिन हमे कहना पडता है कि ब्रह्मगुप्त कुछ पुरानपथी भी थे। आर्यभट के दोष दिखलाने के लिए उन्होने अपने ग्रथ मे एक स्वतत्र अध्याय ही लिखा है। जोश मे आकर उन्होने आयभट की सही बातों को भी गलत बताया। आर्यभट ने कहा था कि राहु-केतु नाम के कोई राक्षस ग्रहणो के समय सूर्य और चद्र को निगल नही जाते। पृथ्वी की छाया जब चद्र पर पडती है तो चद्रग्रहण होता है और चद्र की छाया पृथ्वी पर पडती है तो सूर्यग्रहण होता है। पर ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट की इस सही बात को भी गलत बताया। आर्यभट ने कहा था कि पृथ्वी अपनी धुरी पर परिक्रमा करती रहती है। इस वैज्ञानिक सत्य का भी ब्रह्मगुप्त ने मजाक उडाया।

सवाल पैदा होता है कि ब्रह्मगुप्त-जैसे महान वैज्ञानिक पुरानपथी की बाते क्यो करने लग गए थे? कारण यह है कि उस समय से हमारे देश मे रूढिवादिता शुरू होती दिखाई देती है। कुछ लोग प्रचार करने लग गए थे कि पुराने ग्रथों मे लिखी हुई सारी बातें सही हैं। पुराने ग्रथों में लिखा है कि राहु-केतु चद्र और सूर्य को निगल जाते हैं इसीलिए ग्रहण होते हैं। पुराने ग्रथों में यह

भी लिखा मिलता है कि पृथ्वी स्थिर है । पर ब्रह्मगुप्त के करीब सौ साल पहले आर्यभट इन बातो को गलत साबित कर चुके थे । फिर भी ब्रह्मगुप्त ने, महज पुराने का राग अलापने के लिए, आर्यभट की सही बातो को झूठ साबित करने की कोशिश की । यह भी सभव है कि पुरानी बातो का समर्थन करने के लिए राज -दरबार के ब्राह्मणो ने ब्रह्मगुप्त पर जोर डाला हो । जो भी हो, आर्यभट-जैसे महान वैज्ञानिक के दोष निकालकर ब्रह्मगुप्त ने अपनी सकुचित वृत्ति का ही परिचय दिया ।

ब्रह्मगुप्त का दूसरा ग्रथ है **खडखाद्य** । बडा विचित्र नाम है । 'खडखाद्य' का अर्थ है—गुड मिश्रित भोजन । हम नही जानते कि ब्रह्मगुप्त ने यह नाम क्यो पसद किया । यह ग्रथ उन्होने 67 साल की आयु में लिखा । यह ग्रथ पचाग बनाने की विधियो के बारे मे है, अर्थात् एक **करण-ग्रथ** है । सबसे दिलचस्प बात तो यह है कि इसमे उन्होने आर्यभट का विरोध नही किया, बल्कि ग्रथ के आरभ मे ही कहा है कि आर्यभट के समान फल देनेवाला ग्रथ बना रहा हूँ ।

यह दूसरा ग्रथ लिखने का कारण यह रहा होगा कि ब्रह्मगुप्त के पहले ग्रथ को उचित सम्मान न मिला होगा । इससे वे निराश हो गए होगे । ब्रह्मगुप्त के जीवनकाल मे उनके सिद्धात को भले ही प्रसिद्धि न मिली हो, पर हम जानते हैं कि अगले डेढ़ सौ साल के भीतर न केवल देश मे, बल्कि विदेशो मे भी ब्रह्मगुप्त के ग्रथो का प्रचार हो गया था ।

ब्रह्मगुप्त के जन्म के कुछ साल पहले मक्का मे मुहम्मद पैगबर का जन्म हुआ था। 622 ई से इस्लाम के इतिहास का सिलसिला शुरू होता है। इसके बाद सौ साल के भीतर ही स्पेन से लेकर सिंध तक इस्लाम का झडा फहराने लगा था। भारत पर 712 ई के पहले हमले के बाद सिंध प्रात अरबो के अधिकार मे चला गया था। तब बगदाद के खलीफा इस्लामी साम्राज्य के शासक थे। बगदाद के विद्याकेद्र मे यूनानी और सस्कृत ग्रथो के अरबी मे अनुवाद होने लगे। खलीफा अल्-मसूर (754-775 ई) ने बगदाद को साम्राज्य की राजधानी का रूप दिया था। इसी अल्-मसूर के शासन-काल मे सिंध से कुछ दूत बगदाद गए थे। ये दूत अपने साथ ब्रह्मगुप्त के ग्रथ भी ले गए थे।

बगदाद मे ब्रह्मगुप्त के ग्रथो का अरबी भाषा मे अनुवाद हुआ। वहाँ ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात ने 'सिंद-हिंद' (हिंद का सिद्धात) और खडखाद्य ने 'अल-अरकद' के नाम से खूब प्रसिद्धि पाई। इन्ही ग्रथो से पहले-पहल अरबो को भारतीय ज्योतिष और गणित की जानकारी मिली। अरबी साहित्य मे ब्रह्मगुप्त के इन ग्रथो के अनेक उल्लेख मिलते हैं।

ग्यारहवी शताब्दी के आरभ मे मध्य एशिया का प्रसिद्ध पंडित अल्बेरूनी भारत आया था। वह सस्कृत भाषा जानता था। उसने अपनी भारत-यात्रा मे भारत की गणित, ज्योतिष आदि विद्याओ का गहरा अध्ययन किया था। बाद मे उसने भारत के बारे मे एक प्रसिद्ध ग्रथ

मध्य एशिया के प्रख्यात गणितज्ञ-ज्योतिषी एव भारतविद् अल्बेरूनी (973 1048 ई)

लिखा । इस ग्रथ मे भारतीय ज्योतिष व गणित के बारे में बहुत-सारी जानकारी मिलती है । अल्बेरूनी ने ब्रह्मगुप्त की भूरि-भूरि प्रशसा की है, पर ब्रह्मगुप्त ने आर्यभट के जो दोष निकाले थे, उनकी अल्बेरूनी ने आलोचना भी की है । अल्बेरूनी ने ब्रह्मगुप्त के ब्राह्मस्फुट-सिद्धात का अरबी मे अनुवाद भी किया था, किंतु आजकल वह ग्रथ नही मिलता । जो भी हो, यह निश्चित है कि भारतीय गणित एव ज्योतिष का अरबो मे प्रचार करने मे

ब्रह्मगुप्त के ग्रथो ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

अरबो के हाथो भारतीय विज्ञान का यूरोप मे प्रचार-प्रसार हुआ। दसवी शताब्दी से अरबी ग्रथो के लैटिन भाषा मे अनुवाद होने लग गए थे। इस प्रकार, यूरोप के विद्वानो को भारतीय गणित एव ज्योतिष की जानकारी मिली। अरबी विद्वान जानते थे कि उन्हे यह ज्ञान भारत से मिला है। भारतीय अक-पद्धति भी उन्हे हमारे यहाँ से मिली थी। पर भारतीय अक-पद्धति और गणित जब यूरोप मे पहुँचा, तो यूरोपवालो ने समझा कि यह अरबी ज्ञान है। भारतीय गणित की कई विधियो का और अक-पद्धति का यूरोप मे प्रचार हुआ तब भी उस समय के यूरोपवासियो को यह पता नही था कि यह ज्ञान भारत से आया है।

भारत पर अग्रेजी शासन के आरंभिक दिनो मे कुछ अग्रेज विद्वानो ने भारत के पुराने साहित्य का अध्ययन शुरू किया। ऐसे ही एक विद्वान थे कोलब्रुक महाशय। उन्होने पहली बार 1817 ई मे ब्रह्मगुप्त के ग्रथ के **कुट्टकाध्याय** (बीजगणित) का अग्रेजी भाषा मे अनुवाद प्रकाशित किया। तब जाकर यूरोप के विद्वानो को पता चला कि आधुनिक बीजगणित असल मे भारतीय बीजगणित पर ही आधारित है। आज हम स्कूल-कॉलेजो मे जो गणित पढ़ते हैं, उसका विकास यूरोप के देशो मे हुआ है। पर हमे यह हमेशा ध्यान मे रखना चाहिए कि आधुनिक गणित का महल भारतीय नींव पर खडा है।

वाग्भट

आज हमारे देश मे रोगो का इलाज कई तरीको से होता है। कुछ लोग आधुनिक पद्धति से इलाज करवाना पसद करते हैं, तो कुछ अब भी पुरानी आयुर्वेद-पद्धति पर श्रद्धा रखते हैं। आयुर्वेद के कुछ इलाज सचमुच ही बडे महत्त्व के हैं। आयुर्वेद का विकास हमारे देश में हुआ है। सदियो से इस विज्ञान का विकास होता आ रहा है। आयुर्वेदशास्त्र पर चरक और सुश्रुत के ग्रथ प्रसिद्ध हैं। वैद्य लोग आज भी इन ग्रथो का इस्तेमाल करते हैं।

चरक और सुश्रुत की तरह आज वाग्भट के ग्रथ भी प्रसिद्ध हैं। वाग्भट के लिखे हुए दो ग्रथ हैं—**अष्टाग-सग्रह** और **अष्टाग-हृदय**। इनमे अष्टाग-सग्रह बडे महत्त्व का ग्रथ है। इसी ग्रथ के आधार पर बाद में पद्य मे अष्टाग-हृदय लिखा गया था। पिछले लगभग एक हजार सालो मे वाग्भट के ग्रंथो का हमारे देश मे बडा प्रचार रहा। वैद्य लोग आज भी वाग्भट के ग्रंथो का इस्तेमाल करते हैं। एक कहावत है—वाग्भट के अष्टाग-सग्रह का अच्छा ज्ञान हो तो पुराने ग्रथ पढ़ना बेकार हैं और अष्टाग-सग्रह का ज्ञान न हो तो फिर पुराने ग्रथ

पढ़ने से भी कोई लाभ नही। इसी बात को एक सुदर सस्कृत श्लोक मे कहा गया है

अष्टागसग्रहे ज्ञाते वृथा प्राकृतत्रयो श्रम ।
अष्टागसग्रहेऽज्ञाते वृथा प्राकृतत्रयो श्रम ।।

वाग्भट की जीवनी और ग्रथो के बारे मे विद्वानो मे कुछ मतभेद है। हमारे देश मे वाग्भट नाम के कई पंडित हुए हैं। कुछ विद्वानो का कहना है कि अष्टाग-सग्रह और अष्टाग-हृदय एक ही वाग्भट की रचनाएँ नही हैं। यह विचार विदेशी विद्वानो का है। पर हमारे देश के वैद्यो का विश्वास है कि ये दोनो ग्रथ एक ही वाग्भट के लिखे हुए हैं। अष्टाग-सग्रह ही प्रमुख ग्रथ है। यह गद्य और पद्य मे लिखा गया है। इसी ग्रथ के आधार पर बाद मे अष्टाग-हृदय की रचना हुई है। यह ग्रथ केवल पद्य मे है। अष्टाग-हृदय को हम अष्टाग-सग्रह का संक्षिप्त सस्करण मान सकते हैं।

वाग्भट अपने ग्रथ मे अपने बारे मे बहुत कम जानकारी देते हैं। इनका जन्म सिंधुप्रदेश मे हुआ था। इनके पिता का नाम सिंहगुप्त था और पितामह का नाम वाग्भट था। इनके गुरु अवलोकितेश्वर थे। वाग्भट बौद्ध-धर्म के अनुयायी थे। इनके ग्रथो मे भगवान बुद्ध का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है। बौद्ध-धर्म मे भगवान बुद्ध को 'भैषज्यगुरु' यानी वैद्यो के गुरु मानने की परपरा रही है।

वाग्भट का जन्म ठीक किस साल हुआ, इसके बारे मे

हमे कोई जानकारी नही मिलती । पर इतना निश्चित है कि ये गुप्त-काल के बाद मे हुए । सभी बातो पर विचार करके यह कहा जा सकता है कि वाग्भट 700 ई के आसपास जीवित थे ।

हम बता चुके हैं कि अष्टाग-सग्रह ग्रथ गद्य और पद्य मे लिखा गया है। पुराने जमाने मे हमारे देश मे चिकित्साशास्त्र के आठ अग माने गए थे । इसीलिए वाग्भट ने अपने ग्रथ को यह नाम दिया है । अष्टाग-सग्रह ग्रथ 6 पुस्तको और 150 अध्यायो मे बाँटा गया है । इस ग्रथ के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय हमारे देश मे चिकित्सा की पद्धति कैसी थी ।

अष्टाग-सग्रह की पहली पुस्तक मे चिकित्साशास्त्र की विधि के बारे में जानकारी दी गई है । इसमे बतलाया गया है कि विद्यार्थी को चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए । इसमे दिन और ऋतुओ के प्रभाव की जानकारी है, रोगो के कारण बतलाए गए हैं और नाना प्रकार की भोजन सामग्री तथा विपमय भोजन के लक्षण बतलाए गए हैं । विपमय भोजन के इलाज के बारे मे बतलाया गया है और यह भी बतलाया है कि राजाओ को भोजन मे किस प्रकार की सावधानी बरतनी चाहिए । इसी पुस्तक मे औपधियो के गुणधर्म, वायु, पित्त और कफ की जानकारी और आँख के रोगो के इलाज बतलाए गए हैं ।

दूसरी पुस्तक मे मानव-शरीर-रचना के बारे मे जानकारी दी गई है । इसमे बताया गया है कि माँ के गर्भ

मे धीरे-धीरे बालक का विकास कैसे होता है। इसमे गर्भवती स्त्री को होनेवाले रोगो की भी जानकारी दी गई है। तीसरी पुस्तक मे ज्वर, मधुमेह, चर्मरोग, स्नायुरोग आदि के लक्षण बतलाए गए हैं। अंतिम दो पुस्तको मे मुख्यत बच्चो के रोगो का विवरण है। इसमे पागलपन, लकवा तथा कान, नाक, मुँह आदि के रोग, इत्यादि के बारे मे जानकारी दी गई है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि वाग्भट ने अपने इस ग्रथ मे सभी रोगो तथा उनके इलाजो के बारे मे जानकारी दी है।

हम बता चुके हैं कि वाग्भट का अष्टाग-हृदय ग्रथ उनके अपने अष्टाग-सग्रह पर आधारित है। इसमे भी 6 पुस्तके हैं, पर यह 120 अध्यायो मे बाँटा गया है। इसमे वाग्भट ने चरक, सुश्रुत, भेल, काश्यप, धन्वतरि तथा अन्य अनेक पुराने चिकित्सको के बारे मे जानकारी दी है। पर यह ग्रथ मुख्यत अष्टाग-सग्रह के आधार पर ही लिखा गया है। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि इसमे वाग्भट ने सुश्रुत के आधार पर शल्य-चिकित्सा की भी जानकारी दी है। पर इस ग्रथ मे अफीम, नाडी-परीक्षा और रासायनिक उपचारो का वर्णन नही है।

अष्टाग-हृदय केवल पद्य मे लिखा गया है। इस ग्रथ का तिब्बती भाषा मे भी अनुवाद हुआ था। इससे पता चलता है कि कुछ ही दिनो बाद वाग्भाट की ख्याति देश-विदेश में दूर-दूर तक फैल गई थी। दक्षिण-भारत के वैद्य आज भी वाग्भट के ग्रथों को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं। इस ग्रथ के महत्त्व को इसी से समझा जा सकता

है कि बाद के वैद्यो ने इस पर करीब 30 टीकाएँ लिखी हैं। आयुर्वेद के किसी भी अन्य ग्रथ पर इतनी अधिक टीकाएँ नही लिखी गई। वाग्भट के अष्टाग-सग्रह पर भी टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमे इदु की लिखी हुई **शशिलेखा** नाम की टीका अधिक प्रसिद्ध है।

पुराने जमाने में हमारे देश मे आयुर्वेद को बडा सम्मान प्राप्त था। वैद्यो की जिम्मेदारी के बारे मे बडे कडे नियम थे। वाग्भट ने वैद्यो के कर्तव्यो के बारे मे बडी अच्छी हिदायतें दी हैं। वे लिखते हैं—

—वैद्य को सबके साथ मित्रता रखनी चाहिए। रोगियो के प्रति दयाभाव रखना चाहिए। दुष्ट रोगी के प्रति भी मन मे बदला लेने की भावना नही रखनी चाहिए। वैद्य को इन सदाचारो का हमेशा स्मरण रखना चाहिए।

—यह चिकित्साशास्त्र साक्षात् अमृत-जैसा है। इसे यदि गदे पात्र मे रखा जाए तो यह भयकर विष बन जाता है। जो वैद्य केवल पोथियो के पन्ने पलटकर चिकित्सा करते हैं, चिकित्साशास्त्र का गहरा अध्ययन नही करते, वे यम की तरह होते हैं। ऐसे वैद्यो से दूर रहना ही अच्छा है।

वाग्भट जिस समय पैदा हुए थे, वह काल भारत के इतिहास मे कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है। ईसा की पहली शताब्दी से हमारे देश मे ज्ञान-विज्ञान की उन्नति शुरू होती है। उस समय स्वतत्र-चिंतन के लिए पूरी छूट थी। एक-दूसरे का खडन करने की भी स्वतत्रता थी।

इसीलिए विज्ञान की उन्नति हुई थी। खडन-मडन से ही विज्ञान आगे बढ़ता है।

पर गुप्त-काल के बाद ब्राह्मण-धर्म ने स्वतत्र-चितन पर पाबदी लगा दी। कहा जाने लगा कि पुराने ग्रथो की सारी बाते सही हैं। इसलिए पुरानी बातो का खडन करने की सहसा किसी की हिम्मत नही होती थी। उसी समय यह भी कहा जाने लगा कि पुराना जमाना सतयुग का था और यह नया जमाना कलियुग का है। वाग्भट ने यद्यपि पुरानी आयुर्वेद परपरा को ही आगे बढ़ाया था, फिर भी वाग्भट को 'कलियुग का चिकित्सक' कहा गया।

पुरानी बातो को बिलकुल सही मानने की परपरा को रूढ़िवादिता कहते हैं। वाग्भट इस रूढ़िवादिता के बहुत खिलाफ थे। उस समय कुछ लोग कहने लगे होंगे कि पुराने ग्रथो का आयुर्वेद-ज्ञान ही सही है। वाग्भट ने इस बात का जबरदस्त विरोध किया। अष्टाग-हृदय के एक श्लोक मे वे लिखते हैं

—पुराने ऋषि-मुनियो के ग्रथो मे ही सत्यता है, तो चरक और सुश्रुत के ग्रथो को भी छोड दो और केवल भेड आदि के ग्रथो को पढ़ो। असल मे सही बात जहाँ भी मिले, उसे ग्रहण कर लेना चाहिए।

एक अन्य श्लोक मे वाग्भट कहते हैं कोई बात किसी ब्रह्मा ने कही हो या ब्रह्मा के बनाए हुए किसी मनुष्य ने। इससे सत्य बात छिप नही सकती। सत्य बात का ही अच्छा परिणाम होगा।

इन कथनो से लगता है कि वाग्भट प्रगतिशील विचारो के समर्थक थे। 700 ई तक हमारे देश मे आयुर्वेद के बारे मे जितनी जानकारी जमा हो गई थी, वह सब वाग्भट ने अपने ग्रथों मे रख दी है। उन्होने अपनी जानकारी के अनुसार भी इनमें बहुत-सी नई बाते जोड दी हैं।

पर आज क्या हाल है ? हमारे आज के वैद्य सोचते हैं कि पुराना चिकित्सा-ज्ञान पूर्णत सही है। वे आज भी सुश्रुत, चरक और वाग्भट आदि के ग्रथों से आगे बढ़ने को तैयार नही है। पिछले करीब एक हजार साल से हमारे देश का चिकित्सा-ज्ञान लगभग रुका हुआ पडा है।

आज पाश्चात्य देशो का चिकित्सा-विज्ञान बहुत उन्नति कर चुका है। हमारे वैद्यो को इस नए ज्ञान का भी परिचय प्राप्त करना चाहिए। चरक, सुश्रुत और वाग्भट की कई बाते आज भी उपयोगी हैं। पर आज केवल पुराने ज्ञान पर ही निर्भर रहने से नही चलेगा। आज यदि वाग्भट जीवित होते तो वे भी कहते कि रूढ़िवादिता को छोडकर नए ज्ञान के प्रकाश मे आयुर्वेदशास्त्र को आगे बढ़ाना जरूरी है।

नागार्जुन

इस ससार मे नाना प्रकार की वस्तुएँ हैं। पर ये तमाम वस्तुएँ कुछ मूल वस्तुओ के मेल-जोल से ही बनी हैं। इन्हे मूलतत्त्व कहते हैं। आज के विज्ञान ने ससार मे सौ से भी अधिक मूलतत्त्व खोजे हैं। धरती पर जो मूलतत्त्व मिलते हैं, वही मूलतत्त्व कमो-बेश मात्रा मे चाँद, सूरज, ग्रहो और तारों में भी मौजूद हैं। इन मूलतत्त्वो के तथा इनके मेल से बनी हुई वस्तुओ के गुणधर्मों का अध्ययन जिस विज्ञान मे होता है, उसे ही रसायनशास्त्र कहते हैं।

पुराने जमाने के लोग मानते थे कि इस ससार मे मूलतत्त्व केवल चार या पाँच हैं। हमारे देश के एक दार्शनिक कणाद मुनि ने आज से लगभग दो हजार साल पहले कहा था कि ससार की सारी वस्तुओ की रचना छोटे-छोटे अणुओं से हुई है। उधर यूनान के एक वैज्ञानिक देमोक्रित् ने भी लगभग इसी प्रकार की बात कही थी। ससार की वस्तुओ की रचना के बारे में इस प्रकार की बाते और भी कई विचारकों ने कही थी। इस प्रकार से सोचने को हम दार्शनिक-चिंतन कहते हैं। पर

इस प्रकार के विद्वानो ने रासायनिक वस्तुओ के साथ प्रयोग नही किए थे।

किंतु जनता का एक दूसरा वर्ग सही माने मे रासायनिक पदार्थों के गुणधर्मों की खोज कर रहा था। चित्र बनाने के लिए, बरतनो पर चित्रकारी करने के लिए और कपडो को रगने के लिए रगसीज नाना प्रकार के रग बना रहे थे। उद्योग-धधो के साथ रसायन का विकास हो रहा था। उस जमाने मे यही लोग सच्चे रसायनज्ञ थे, पर उन्होने अपने इन तरीको के बारे मे कोई लेखा-जोखा नही रखा था।

बहुत पुराने जमाने मे आदमी को लोहे का ज्ञान नही था। पहले उसने पत्थरो के औजार बनाए। फिर उसे सोना, चाँदी और ताँबे-जैसी धातुओ का ज्ञान हुआ। नब्बे प्रतिशत ताँबा और दस प्रतिशत टीन (वग) मिलाने से पीतल (काँसा) बनता है। ताँबे से पीतल अधिक मजबूत होता है। ताँबा और पीतल बनानेवाले पुराने जमाने के कमकर सही माने मे धातुकर्मकार थे।

आज से लगभग तीन हजार साल पहले आदमी को लोहे का ज्ञान हुआ। एक नए युग—लौहयुग—की शुरुआत हुई। मानव-जाति के इतिहास मे लोहे का आविष्कार बहुत बडा महत्त्व रखता है। लेकिन आज हम उन व्यक्तियो के नाम नही जानते जिन्होने लोहे का आविष्कार किया था।

दिल्ली की कुतुबमीनार के पास लोहे का एक स्तभ खडा है। इस स्तभ पर उस समय की लिपि मे लिखा हुआ

एक लेख खुदा हुआ है । इस लेख के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोहे का यह स्तभ आज से लगभग सोलह सौ साल पहले बनाया गया था । लोहे का यह स्तभ ससार का एक महान आश्चर्य है । ससार मे अन्यत्र कही भी इस प्रकार की शुद्ध लोहे की पुरानी चीज नही मिलती । इतने बडे पैमाने पर ऊँचे तापमान मे लोहे को गलाकर ढालना सचमुच ही अचरज की बात है, फिर भी हम नही जानते कि यह स्तभ किस राजा ने ढलवाया और किन हाथो ने इसे ढाला है ।

पुराने जमाने का आदमी जडी-बूटियो के रसो से अपना इलाज करता था । वनस्पतियो का उसे अच्छा ज्ञान था । इसलिए औषधि-विज्ञान के साथ-साथ रसायन का भी विकास हुआ था ।

लबा अरसा गुजरा । आदमी ने पारे जैसी अद्‌भुत धातु की खोज की । पुराने जमाने से ही मनुष्य ऐसी चीज की खोज मे रहा है जो उसकी उम्र को बढ़ा सके । ऐसी चीज को उसने 'अमृत' या 'सजीवनी'-जैसे काल्पनिक नाम दिए । एक तरफ किसी करिश्मे से आदमी अपनी आयु बढ़ाने के चक्कर मे फँसा हुआ था, तो दूसरी तरफ उसी करिश्मे से वह अपनी धन-दौलत भी बढ़ाने के लालच मे फँस गया था । कुछ लोग कहने लगे कि पारस पत्थर के स्पर्श से सोना बनाया जा सकता है । कुछ दूसरे लोग कहने लगे कि पारे मे कुछ खास रसायन मिलाने से नकली सोना या चाँदी बनाई जा सकती है । फिर कुछ

लोग यह भी कहने लगे कि इस प्रकार से बनाए गए सोने या चाँदी के भस्म का सेवन करने से आदमी की आयु बढ़ सकती है।

पुराने जमाने मे नकली सोना और चाँदी बनाने का बोलबाला रहा। चीन में ऐसे बहुत-से कीमियागर थे जो नकली सोना बनाने का दावा करते थे। राजे-महाराजे भी इनके चक्कर मे फँसे हुए थे। असल मे नकली सोना बनाने का यह दावा एक ढकोसला ही था। इसलिए चीन के कुछ सम्राटो ने ऐसे कीमियागरो को मौत के घाट भी उतार दिया था।

हमारे देश मे मध्ययुग मे तत्र-मन्त्र का खूब बोलबाला रहा है। मध्ययुग मे हमारे देश मे बौद्ध-धर्म के एक सप्रदाय वज्रयान का काफी प्रभाव था। यह सप्रदाय नेपाल, तिब्बत आदि देशो मे भी फैल गया। वज्रयानी साधक तत्र-मत्र से जनता को प्रभावित करते थे, नकली सोना बनाने का दावा करते थे। उनका यह भी दावा था कि नकली सोने के भस्म का सेवन करने से उम्र बढ़ती है। ये लोग अमरत्व दिलानेवाले अमृत-रस की तलाश मे जी-जान से जुटे हुए थे। बौद्ध-धर्म के इन वज्रयानी साधुओ को सिद्ध कहा जाता है।

इन सिद्धो की बहुत-सी बातो मे कोई सार नही था। पर इनसे हमे दो लाभ हुए। इन सिद्धो को जनता मे प्रचार करना था, इसलिए ये जनता की बोली मे उपदेश देते थे, कविताएँ रचते थे। आज से लगभग एक हजार साल पहले इनकी रची हुई कविताओ मे हमे पहली

बार हिंदी के आदि-रूप के दर्शन होते हैं। दूसरा फायदा यह हुआ कि इनकी नकली सोना और अमृत बनाने की क्रियाओं से रसायनशास्त्र का विकास हुआ। उस जमाने के ऐसे ही एक महान कीमियागर या रसायनज्ञ थे सिद्ध नागार्जुन।

सिद्ध नागार्जुन
एक तिब्बती शिल्प के आधार पर तैयार किया गया चित्र।

हमारे देश मे नागार्जुन नाम के कई विद्वान हुए हैं। इसलिए जिस रसायनज्ञ नागार्जुन की हमे चर्चा करनी है, उनके बारे मे बहुत-सी बाते विवादास्पद हैं। भगवान बुद्ध के करीब पांच सौ साल बाद उनका धर्म दो भागों में बँट गया था। बाद मे जाकर यह धर्म और भी कई

सप्रदायों में बँट गया। इन सप्रदायों मे एक है, महायानी बौद्ध-धर्म का माध्यमिक सप्रदाय। माना जाता है कि नागार्जुन इस सप्रदाय के प्रवर्तक थे। बाद मे इस सप्रदाय का दक्षिण भारत, मध्य-एशिया, तिब्बत, चीन आदि देशों मे खूब प्रचार हुआ।

इस नागार्जुन का समय ईसा की दूसरी शताब्दी माना जाता है। बौद्ध ग्रथो मे इनके बारे मे कई कथाएँ मिलती हैं। इनका जन्म महाराष्ट्र के विदर्भ प्रदेश मे एक ब्राह्मण कुल मे हुआ था। बाद मे ये नालदा-विश्वविद्यालय के आचार्य भी बने थे। कहा जाता है कि एक बार वहाँ बहुत बडा अकाल पडा, तो नागार्जुन ने नकली सोना बनाकर अकाल का निवारण किया था।

लेकिन जिस रसायनज्ञ नागार्जुन की हमे चर्चा करनी है, वे इस दार्शनिक नागार्जुन से भिन्न थे। हम नही जानते कि रसायनज्ञ नागार्जुन ठीक किस समय में हुए, पर अनुमान लगाया जा सकता है कि ये ईसा की सातवी-आठवी शताब्दी में जीवित रहे होगे। तिब्बती साहित्य मे भारतीय सिद्धो के बारे में कई कथाएँ मिलती है। सिद्धो मे चौरासी सिद्धो के बारे मे तिब्बती ग्रथों मे अधिक जानकारी मिलती है। इन चौरासी सिद्धो मे एक थे सिद्ध नागार्जुन। सिद्धों के तिब्बती चित्रो मे नागार्जुन का जो चित्र मिलता है, उसमें उन्हे गले मे सर्प डाले हुए दर्शाया गया है।

नागार्जुन का रसरत्नाकर या रसेंद्र-मगल नामक एक ग्रथ मिलता है। यह ग्रथ सस्कृत भाषा मे है। इसमें

रसायन की कई विधियाँ दी गई हैं। आधुनिक काल के महान भारतीय रसायनज्ञ प्रफुल्लचंद्र राय ने भारतीय रसायनशास्त्र के इतिहास पर एक बडा ग्रथ लिखा है। उसमे उन्होने नागार्जुन के बारे मे बहुत-सी जानकारी दी है और सिद्ध नागार्जुन को प्राचीन भारत का सबसे बडा रसायनज्ञ माना है।

तिब्बती ग्रथो मे सिद्धो के बारे मे बडी मजेदार कथाएँ दी हुई हैं। नागार्जुन के बारे मे जो कथा मिलती है, वह बडी ही रोचक है। इस कथा से पता चलता है कि उस जमाने मे कीमियागर किस प्रकार तन-मन-धन से 'अमृत' की खोज मे, यानी रासायनिक प्रयोगो मे, जुटे हुए थे। कथा इस प्रकार है—

व्यालि नाम का एक धनी ब्राह्मण था। उसने सोचा, मरने के बाद मुक्ति मिली, तो क्या लाभ हुआ? शरीर के रहते इसी जीवन मे अमरत्व मिले, तभी कुछ फायदा है। अमृत ही आदमी को अमर बना सकता है। व्यालि जुट गया अमृत की खोज मे।

व्यालि को पूरा यकीन था कि वह अमृत की खोज करके रहेगा। उसने अपने जीवन के अनेक साल ही नही, बल्कि अपना सारा धन भी अमृत की खोज मे खर्च कर डाला। उसने तरह-तरह की वस्तुओ को एक-दूसरे के साथ मिलाकर देखा, सैकडो प्रयोग किए, अपने इन प्रयोगो का लेखा-जोखा रखा, किंतु उसे अमृत नही मिला। निराश होकर अत मे उसने अपनी वह पुस्तक, जिसमे उसके प्रयोग और फार्मूले लिखे हुए थे, गगा नदी

मे प्रवाहित कर दी। कगाल बनकर वह नीचे गगा-तट के एक दूसरे शहर मे चला गया।

व्यालि जिस नगर मे पहुँचा, वहाँ एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह गगा मे स्नान करने गई, तो उसे नदी की धारा में बहती हुई एक पुस्तक दिखाई दी। यह वही पुस्तक थी जिसे व्यालि ने गगा मे प्रवाहित कर दिया था। इसे भी चमत्कार ही कहा जाएगा कि पानी से उस पुस्तक को कोई हानि नही पहुँची थी। वह वेश्या उस पुस्तक को घर ले आई। व्यालि उस वेश्या का अतिथि था। व्यालि को अपनी पुस्तक देखकर बडा अचरज हुआ। पुस्तक के पुन मिलने को उसने शुभ लक्षण समझा। वह पुन प्रयोगो मे जुट गया।

सिद्धो की रसशाला

अब भी व्यालि को कई साल तक सफलता नही मिली। लेकिन एक दिन, जब वह वेश्या खाना बना रही थी, तो उसने गलती से चुटकी-भर कोई मसाला उस पात्र मे भी डाल दिया जिसमें व्यालि के रसायन का पाक पक रहा था। और इसे करिश्मा ही समझिए, कि उस पाक से 'अमृतरस' तैयार हो गया! जो बात उस ब्राह्मण के चौदह साल के कठोर परिश्रम से नही हो सकी, वह उस अनपढ़ वेश्या के हाथ लगते ही पूरी हो गई!

सिद्धो की साधना में अनपढ़, निम्न वर्ग के नौकर-चाकर लोगो का बडा महत्त्व था। इस कथा मे एक वेश्या का जिक्र है, तो एक अन्य कथा मे वेश्या के स्थान पर एक नौकरानी का जिक्र है।

आगे की कहानी यह है कि वह ब्राह्मण अपने उस अमृतरस को लेकर जगल मे भाग गया। वह उसे दूसरो मे बाँटना नही चाहता था, न ही वह उसका रहस्य किसी दूसरे को बताना चाहता था। वह दलदल से चहुँओर घिरी हुई एक ऊँची चट्टान पर जाकर बैठ गया। अमृत उसे मिल गया था, किंतु अब वह उसी अमृत का कैदी बन गया था!

सिद्ध नागार्जुन को इस बात का पता चला। उन्होने *ध्यान लगा कर व्यालि को खोज निकाला* और उससे अमृत या सजीवनी बनाने का रहस्य मालूम कर लिया।

नागार्जुन का 'रसरत्नाकर' ग्रथ सवाद रूप मे लिखा गया है। यह सवाद नागार्जुन, रत्नघोष, वट-यक्षिणी, शालिवाहन और माडव्य के बीच होता है। रत्नघोष

हाथ जोड़कर नागार्जुन के सामने खड़ा है और उनसे रसायन-विद्या सीखना चाहता है। प्रसन्न होकर नागार्जुन उससे कहते हैं कि, मैं तुम्हें वे सारी औषधियाँ बताऊँगा जिनके सेवन से चेहरे की झुर्रियाँ गायब हो जाती हैं, सफेद बाल काले बनते हैं और बूढ़ा आदमी जवान हो जाता है!

नागार्जुन यह भी जानकारी देते हैं कि उन्होंने बारह साल तक कष्ट सहकर और वट-यक्षिणी (बरगद के पेड़ पर रहनेवाली यक्षिणी) की साधना करके उससे यह विद्या हासिल की थी। वट-यक्षिणी ने ही उन्हें रसबध यानी पारे को बाँधने की विद्या बतलाई थी। नागार्जुन ने रसायन के कुछ प्रयोग इस प्रकार बतलाए हैं

—इसमे आश्चर्य ही क्या, यदि पीले गधक को पलाश के गोद के रस से शोधित किया जाए और गोबर के कडों की आग पर तीन बार पकाया जाए तो इससे चाँदी को सोने मे बदला जा सकता है!

—इसमे भी क्या आश्चर्य, यदि रसक (कैलामाइन) को तीन बार ताँबे के साथ तपाया जाए, तो ताँबा सोने में बदल जाता है!

नागार्जुन ने अपने ग्रथ में पारे को बाँधने का तरीका बतलाया है। पारे को रसराज यानी रसों का राजा कहा जाता था। यह बात बडे महत्त्व की है कि धातुओं का, विशेषत पारे का, औषधि के रूप मे इस्तेमाल पहले-पहल भारत मे ही देखने को मिलता है।

रसरत्नाकर ग्रथ में अनेक रासायनिक विधियो एव रासायनिक उपकरणो का विवरण मिलता है। नागार्जुन

ने बतलाया है कि प्रयोग प्रारभ करने से पहले कोष्टिका-यत्र, वक्रनाल (फुकनी), गोबर की कंडियाँ, धौंकनी, लोहपत्र, काजी तथा तरह-तरह की सडसियों आदि की जरूरत होती है। पारे की पिष्ट का भस्म तैयार करने के लिए गर्भयत्र का इस्तेमाल होता था।

रसायन-यत्र 1 अधःपातनयत्र 2. कोष्ठीयत्र 3 स्वेदनीयत्र 4 तिर्यक्पातनयंत्र

रसायनशास्त्र के इतिहास मे नागार्जुन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कज्जजी (ब्लैक सल्फाइड ऑफ मर्करी) का 'पर्पीटकारस' नाम की औषधि के रूप मे प्रयोग किया था। इसी प्रकार, रसायन की कई विधियाँ हैं जो पहली बार रसरत्नाकर ग्रथ मे देखने को मिलती हैं। रसरत्नाकर ग्रथ के आधार पर बाद मे हमारे देश मे रसायनशास्त्र के अनेक ग्रथो की रचना हुई। इनमे तेरहवी शताब्दी का 'रसरत्नसमुच्चय' ग्रथ विशेष महत्त्व का है। बाद के रसायनज्ञों ने नागार्जुन को हमेशा ही एक महान रसायनज्ञ के रूप मे याद किया है।

दक्षिण-भारत के गुटूर जिले मे नागार्जुनकोड नाम का एक प्रसिद्ध स्थान है। पुराने जमाने में इस स्थान को विजयपुरी कहते थे और इस प्रदेश को श्रीशैलपर्वत। असल मे नागार्जुनकोड की खुदाई मे जो अवशेष मिले हैं, उनमे नागार्जुन का कोई उल्लेख नही मिलता। मध्य-एशिया के प्रसिद्ध यात्री अल्बेरूनी (भारत-यात्रा 1017-30 ई) ने लिखा है कि नागार्जुन नाम के एक बडे रसायनज्ञ उनसे सौ साल पहले हुए हैं और वे सोमनाथ के पास के दैहक स्थान के निवासी थे। असल मे नागार्जुन के काल के बारे मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। आज उनका 'रसरत्नाकर' ग्रथ उपलब्ध है। यह ग्रथ भारतीय रसायनशास्त्र की एक अमूल्य सपत्ति है।

भास्कराचार्य

आज से लगभग नौ सौ साल पहले।

उस समय हमारा देश छोटे-छोटे राज्यो मे बँटा हुआ था। भारतीय राजे आपस मे लडाइयाँ करते थे। समाज ऊँच और नीच के वर्गों में बँटा हुआ था। जात-पाँत का बोलबाला था। इसी आपसी कलह और भेदभाव के कारण भारत के काफी हिस्से पर तुर्कों और अफगान शासको ने अपना अधिकार जमा लिया था।

हमारे देश में आर्यभट के समय से विज्ञान के सही अध्ययन का सिलसिला आरभ हो गया था। उनके बाद लगभग छह सौ साल तक विज्ञान के विविध क्षेत्रों मे हमारे देश ने खूब उन्नति की। इस बीच हमारे देश ने बडे-बडे वैज्ञानिक पैदा किए। पुरानी मान्यताओ पर प्रश्नचिह्न लगाने से ही ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुआ करती है। हमारे वैज्ञानिक जब तक इस नीति पर चलते रहे, तब तक नई-नई बाते खोजी जाती रही। परतु एक समय ऐसा आया कि हमारे पंडित पुरानपथी बन गए। वे मानने लग गए कि वेद, ब्राह्मण, स्मृति आदि पुराने ग्रथों में जो लिखा हुआ है, वह बिलकुल सही है। इस प्रकार

सोचने से ज्ञान-विज्ञान की उन्नति रुक गई।

इस प्रकार से सोचने को रूढ़िवादिता कहते हैं। आज से लगभग एक हजार साल पहले हमारे देश में रूढ़िवादिता जोर पकडने लग गई थी। परतु कुछ इने-गिने पंडित भी थे जो वैज्ञानिक ढग से सोचना जानते थे। ऐसे ही एक महापंडित थे भास्कराचार्य।

भास्कराचार्य अपने समय मे हमारे देश के सबसे बडे वैज्ञानिक थे। उनके समय तक अभी हम विज्ञान के क्षेत्र मे यूरोप के किसी भी देश से पीछे नही थे। भास्कराचार्य बारहवी शताब्दी मे यानी आज से लगभग साढ़े आठ सौ साल पहले हुए। उस समय यूरोप के इटली, स्पेन, फ्रास आदि देशो मे पुराने यूनानी ग्रथो का नए सिरे से अध्ययन शुरू हुआ। उसी समय यूरोप की भाषाओं में अरबी ग्रथो के भी अनुवाद हो रहे थे। इन अरबी ग्रथो मे कई ऐसे भारतीय ग्रथ थे जिनका सस्कृत भाषा से अरबी मे अनुवाद हुआ था।

इधर भारत मे भास्कराचार्य ज्योतिष और गणित के बारे मे ग्रथ लिख रहे थे और उधर यूरोप मे अरबी साहित्य के माध्यम से यूरोपवाले भारत के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का परिचय प्राप्त कर रहे थे। उसी समय यूरोप मे शून्य पर आधारित भारतीय अकपद्धति का प्रवेश हुआ था।

प्राचीन भारत के अन्य वैज्ञानिको की तरह भास्कराचार्य के जीवन के बारे मे भी हमे बहुत अधिक जानकारी नही मिलती। उन्होने अपनी पुस्तको मे अपने

बारे मे जो दो-चार बाते लिखी हैं, उतनी ही हमें मालूम हैं। भास्कराचार्य का प्रमुख ग्रथ है सिद्धात-शिरोमणि। इसमें वे बतलाते हैं कि उन्होने 36 साल की आयु मे इस ग्रथ की रचना की और उनका जन्म शक-सवत् 1036 में हुआ था। शक-सवत् मे 78 साल जोड देने से ईसवी सन् प्राप्त होता है। अत भास्कराचार्य का जन्म 1036 + 78 = 1114 ई मे हुआ था। 36 साल की आयु मे, अर्थात् 1150 ई मे, उन्होने अपने इस महान ग्रथ 'सिद्धात-शिरोमणि' की रचना की थी।
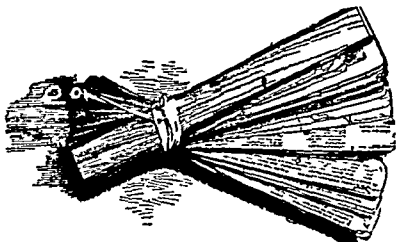
सिद्धात शिरोमणि की एक पुस्तक
'लीलावती' की तालपत्र पोथी

भास्कराचार्य अपने ग्रथ में जानकारी देते हैं कि उनका जन्म सह्याद्रि पर्वत-प्रदेश में स्थित विज्जडविड गाँव में हुआ था। सह्याद्रि पर्वत आजकल के महाराष्ट्र में है, परतु यह विज्जडविड गाँव ठीक किस स्थान पर था,

इसके बारे मे आज हम यकीन के साथ कुछ नही कह सकते।

पुराने जमाने में पंडित लोग राज-दरबारो मे आश्रय पाते थे। राजाओं की ओर से उनके खाने-पीने की व्यवस्था होती थी। इसलिए वे अक्सर अपने ग्रथो मे अपने आश्रयदाताओं की बढ़-चढ़कर प्रशसा करते थे। पर भास्कराचार्य के किसी भी ग्रथ मे किसी भी राजा की स्तुति नही है। उन्होंने यह भी नही लिखा है कि वे अमुक राजा के दरबार मे रहते थे। इससे हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि भास्कराचार्य स्वतत्र प्रकृति के पंडित थे और उन्होने अपने बल पर ही विज्ञान का अनुसधान किया था।

भास्कराचार्य भले ही किसी राजा के आश्रय मे न रहे हो, पर उनके कुल के कई व्यक्ति, उनके पहले और बाद मे, राजाश्रय मे रहे। जानकारी मिलती है कि उनके बाद उनके कुल के कुछ पंडित देवगिरि के यादववशी राजाओ के दरबार मे राजज्योतिषी थे। भास्कराचार्य के कुल मे ज्योतिष का अध्ययन परपरा से चला आ रहा था। उनके पिता महेश्वर खुद ज्योतिषी थे और वे ही भास्कराचार्य के गुरु थे।

भास्कराचार्य का सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ सस्कृत भाषा में है। उस समय हमारे देश की जनता की भाषा सस्कृत नही थी। सस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रश आदि सीढ़ियों को लाँघ कर उस समय हमारे देश मे प्रातीय भाषाएँ जन्म ले चुकी थी। ज्ञान-विज्ञान के ग्रथ जनता

की भापा में न लिखे जाने के कारण ज्ञान-विज्ञान का प्रसार जनता तक न हो सका। उच्च वर्ग के लोग ही ज्ञान-विज्ञान के ठेकेदार थे।

सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ पद्य में है। भास्कर ने यह ग्रथ पद्य मे तो लिखा, परतु वे जानते थे कि उनके समय के सस्कृत जाननेवाले सारे पंडित इसे आसानी से समझ नही पाएँगे। इसलिए उन्होंने स्वय ही अपने ग्रथ पर टीका लिखी। अपनी इस टीका को उन्होंने 'वासनाभाष्य' का नाम दिया।

सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ काफी बडा है। यह चार पुस्तको मे बँटा हुआ है पाटीगणित या लीलावती, बीजगणित, गोलाध्याय और ग्रहगणित। पहली पुस्तक का विपय है अकगणित। दूसरी पुस्तक का विपय नाम से ही जाहिर है कि बीजगणित है। तीसरी और चौथी पुस्तको मे कालगणना और ज्योतिष सबधी बाते हैं।
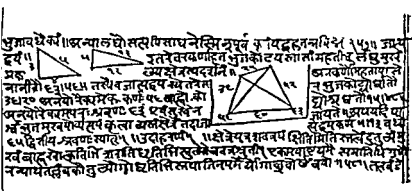
लीलावती की हस्तलिपि का एक पृष्ठ

पहली पुस्तक पाटीगणित 'लीलावती' के नाम से ही अधिक मशहूर है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारत के वैज्ञानिक साहित्य में यही पुस्तक सबसे अधिक प्रसिद्ध हुई है। पर इस पुस्तक का यह 'लीलावती' नामकरण बडे क्रुतूहल का विषय है।

इस पुस्तक में सबोधन के रूप में 'लीलावती' शब्द कई बार आया है। भास्कराचार्य लीलावती के सामने गणित के सवाल रखते हैं और वे लीलावती से इन सवालो का हल खोजने को कहते हैं। भास्कराचार्य कभी लीलावती की आँखों की तुलना हरिण की आँखो से करते हैं, तो कभी उसकी बुद्धि की तारीफ करते हैं। वे कभी उसे 'सखी' कहते हैं, कभी 'बाले' कहते हैं, तो कभी 'प्रिये' भी कहते हैं! ऐसी हालत में हम उलझन मे पड जाते हैं और समझ नही पाते कि लीलावती के साथ भास्कराचार्य का क्या रिश्ता था। क्या लीलावती भास्कराचार्य की प्रेमिका थी ? या कि वह उनकी पुत्री थी ?

पुराने सस्कृत साहित्य में भास्कर और लीलावती के रिश्ते के बारे मे हमे कोई ठोस जानकारी नही मिलती। पर अकबर बादशाह के दरबार के एक रत्न फैजी ने जब 'लीलावती' का फारसी भाषा में अनुवाद किया, तो उन्होंने इसमे लीलावती के बारे में एक दिलचस्प किस्सा लिख दिया।

फैजी ने लिखा है कि लीलावती भास्कर की पुत्री थी। किस्सा यो है कि लीलावती जब अभी बालिका थी

तो उसके पंडित पिता ने ज्योतिष के आधार पर यह जान लिया था कि लीलावती का विवाह एक खास मुहूर्त पर होगा, तभी उसका आगे का वैवाहिक जीवन सुखमय होगा। वह शुभमुहूर्त खोजा गया। शादी की तैयारियाँ हुईं। शुभमुहूर्त का ठीक-ठीक समय जानने के लिए जलघडी का इतजाम किया गया। उस जमाने मे आज जैसी घडियाँ नही थी। ताँबे या काँसे का एक अर्धगोलाकार पात्र लिया जाता था। इस पात्र की पेदी मे एक छेद बनाया जाता था। फिर इस पात्र को पानी से भरे हुए एक बडे बर्तन मे तरगता छोड दिया जाता। पात्र की पेदी के छेद से धीरे-धीरे पानी पात्र के भीतर पहुँचता। पात्र के भीतर के पानी की मात्रा का मापन करके समय की अवधि ज्ञात की जाती थी। उस समय की घडियाँ इसी प्रकार की होती थी।

घटीयत्र में झाँकती हुई लीलावती की सहेलियाँ

नन्ही लीलावती शादी का खूबसूरत लिबास पहने हुए थी। अपनी सखियों के साथ वह उस जलघडी के पास गई। भूल से उसके वस्त्रो की एक मणि उस जलघडी के पात्र में गिर ही तो गई। किसी को भी इस बात की खबर नही थी कि वह मणि पात्र की पेदी मे जाकर बैठ गई है और पात्र के भीतर पानी का आना रुक गया है। समय का प्रवाह अपनी अखड गति से चल रहा था, किंतु मानव को समय का ज्ञान दिलानेवाली वह जलघडी रुक गई थी! शुभमुहूर्त टल गया था। लीलावती का विवाह न हो सका! पिता को बेहद रज हुआ। कहते हैं कि भास्कर ने अपनी पुत्री को इन शब्दो मे तसल्ली दी—बेटी, मैं तुम्हे वह शास्त्र पढ़ाऊँगा जिससे आकाश के इन ग्रह-नक्षत्रो की गतियो को समझा जा सकता है और इस शास्त्र के बारे मे जो पुस्तक लिखूँगा, उसे 'लीलावती' नाम दूँगा।

लीलावती को गणित पढ़ाते हुए भास्कराचार्य

लगता है कि यह किस्सा बाद का गढ़ा हुआ है। यह सही है कि भास्कर के जमाने के लोग फलित-ज्योतिष में

यकीन करते थे। परतु भास्कर के सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ मे इस अधविश्वास की कोई चर्चा नही है। उन्होने अपने ग्रथ मे गणित और ज्योतिष की शुद्ध वैज्ञानिक चर्चा ही की है।

लीलावती पुस्तक मे अकगणित के परिकर्म समझाए गए हैं। ये सारे विषय आजकल हाईस्कूल की कक्षाओ मे पढ़ाए जाते हैं, पर लीलावती के कुछ प्रश्न काफी कठिन भी हैं। इतने कठिन कि वे बहुतो की बुद्धि को झकझोर दे सकते हैं।

भास्कर ने बीजगणित को 'अव्यक्त गणित' कहा है। बीजगणित मे अव्यक्त यानी अज्ञात राशियो की सहायता से गणना की जाती है। आजकल इन अज्ञात राशियो के लिए हम क्ष, य जैसे अक्षरो का इस्तेमाल करते हैं। भास्कर के जमाने मे इन अज्ञात राशियो को 'यावत्-तावत्' कहते थे और इसे सक्षेप में 'या' लिखते थे। पुराने जमाने मे हमारे देश मे वर्गमूल के लिए आज जैसा √ चिह्न नही था। जिस राशि का वर्गमूल जानना होता था, उसके पहले 'क' अक्षर लिख दिया जाता था। यह इसलिए कि उस समय वर्गमूल की क्रिया के लिए 'करणी' शब्द प्रचलित था। हमारे देश मे भास्कर के भी बहुत पहले सरल-समीकरण, वर्ग समीकरण आदि को अच्छी तरह से जान लिया गया था। भास्कर ने अपनी दूसरी पुस्तक मे इनका बढ़िया विवेचन किया है।

लीलावती में रेखागणित का एक प्रमेय

आधनिक गणित में शून्य और अनत की धारणाओं का बडा महत्त्व है। शून्य के चिह्न तथा इसके पीछे निहित गणितीय धारणा की खोज भारत में ही हुई थी। भास्कर ने गणित में शून्य के इस्तेमाल का बढ़िया विवेचन किया है। अनत को उन्होंने 'ख-हर' का नाम दिया था। 'ख' का अर्थ होता है 'शून्य'। जिस सख्या के हर स्थान में शून्य हो यह सख्या 'ख-हर' अर्थात् अनत होती है।

इससे पता चलता है कि भास्कर को अनत से सबंधित गणित की बुनियादी बातो की अच्छी पहचान थी। भास्कर के लगभग चार सौ साल बाद यूरोप के महान वैज्ञानिक **आइजेक न्यूटन** और **लाइबनिट्ज** ने इसी धारणा को आगे बढ़ाकर एक नए प्रकार के गणित को जन्म दिया था। इस नए गणित को **कलन-गणित** (कैल्कुलस) कहते हैं। कलन-गणित आज एक अत्यत उपयोगी विज्ञान है। भास्कर के बाद यदि उनकी जैसी प्रखर प्रतिभावाले पंडित हमारे देश मे पैदा होते तो इस गणिताग का निर्माण हमारे देश मे भी हो सकता था।

भास्कराचार्य एक ऊँचे दर्जे के ज्योतिषी भी थे। सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ की दो पुस्तकों मे ज्योतिष की चर्चा है। अब तो ज्योतिषशास्त्र ने बहुत तरक्की की है। आधुनिक ज्योतिष के सामने भास्कराचार्य के समय का ज्योतिष-ज्ञान फीका नजर आता है। भास्कर के समय मे दूरबीन-जैसे आधुनिक ज्योतिषयत्र नही थे। ग्रह-नक्षत्रो की सही-सही दूरियाँ जानने के लिए कोई साधन उपलब्ध नही था। फिर भी हमारे पुराने ज्योतिषियो को ग्रह-नक्षत्रो की गतिविधियो का अच्छा ज्ञान था। आकाश मे ग्रह-नक्षत्रो की गतियो और स्थितियों को जानने के लिए कई प्रकार के ज्योतिष-यत्रो का इस्तेमाल होता था। भास्कर ने अपने ग्रथ के एक प्रकरण मे इन ज्योतिष-यत्रो की जानकारी दी है।

देखने मे आता है कि वैज्ञानिक जब तरुण होता है, जब उसकी बुद्धि प्रखर होती है, तब वह अपनी सारी

शक्ति शुद्ध वैज्ञानिक खोज में ही जोत देता है। उमर बढ़ती है तो वह कुछ भिन्न प्रकार से सोचता है, कुछ-कुछ दार्शनिक की तरह सोचता है। भास्कर के सिद्धात-शिरोमणि ग्रथ में फलित-ज्योतिष की कोई चर्चा नही। पर भास्कर जब बूढ़े हुए तो उन्होने करण-कुतूहल नाम से एक पुस्तक लिखी। जिस पुस्तक मे पचाग बनाने के तरीके बतलाए जाते हैं उसे कारण ग्रथ कहते हैं। भास्कर की यह पुस्तक भी पचाग बनाने के तरीके बतलाने के लिए लिखी गई थी। पचाग के साथ फलित-ज्योतिष भी मिला रहता है। भास्कर ने अपनी यह पुस्तक 68 साल की उम्र मे लिखी थी। हम नही जानते कि भास्कर की मृत्यु किस साल हुई, परतु 68 साल की आयु मे करण-कुतूहल जैसे कठिन ग्रथ को उन्होने लिखा, तो पता चलता है कि उस उम्र मे भी उनके शरीर और दिमाग मे कोई थकावट नही आई थी।

भास्कर केवल वैज्ञानिक ही नही थे। वे उच्च कोटि के कवि भी थे। उन्होने अपने ग्रथ मे गणित के सवालो के साथ-साथ प्रकृति के सौंदर्य का बहुत ही सुदर वर्णन किया है।

भास्कराचार्य निस्सदेह एक महान गणितज्ञ थे। देश मे उनके ग्रथो का बडा आदर हुआ और उन पर अनेक टीकाएँ लिखी गईं। हम बता चुके हैं कि अकबर के आदेश से फैजी ने 1587 ई में लीलावती का फारसी मे अनुवाद किया था। शाहजहाँ के दरबार के अताउल्लाह

रसीदी ने 1634 ई मे भास्कर के बीजगणित का फारसी मे अनुवाद किया।

लीलावती के फारसी अनुवाद का एक पृष्ठ

ईस्ट इंडिया कपनी के अधिकारी एडवर्ड स्ट्रैची ने 1813 ई मे पहली बार भास्कर के बीजगणित का

फारसी से अग्रेजी मे अनुवाद किया था। फिर जे टेलर ने 1816 ई मे लीलावती का अग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। परतु लीलावती और बीजगणित का मूल सस्कृत से अग्रेजी मे पहली बार प्रामाणिक अनुवाद हेनरी थॉमस कोलब्रूक ने 1817 ई मे किया। अब भास्कराचार्य के ग्रथों के हिंदी मे भी कई अनुवाद उपलब्ध हैं।

पुरानी पीढ़ी के लोगों को कहते हुए अब भी सुना जा सकता है कि जो भास्कर की **लीलावती** को पढ़ेगा वह पेडो की पत्तियाँ तक गिन सकता है। इसका अर्थ यही है कि भास्कर के गणित को पढ़ने से आदमी बडा गणितज्ञ बन सकता है। पर आज यह कथन सच नही है। भास्कर के बाद पिछले करीब आठ सौ सालो मे गणितशास्त्र ने बहुत उन्नति की है।

पुराने जमाने के विद्यार्थियों को भास्कर की पुस्तकें बडी कठिन जान पडती होगी। इसीलिए किसी कवि ने एक श्लोक मे लिख दिया है कि भास्कर के ग्रथों को या तो स्वय भास्कर ही समझ सकते हैं या फिर सरस्वती। यह कथन भी सही नही है। भास्कर ने गणित और ज्योतिष के बारे मे सस्कृत काव्य मे जो बाते लिखी हैं उन्हे यदि मातृभाषाओं मे उल्था करके समझाया जाए तो वे आसानी से समझ मे आ ही सकती हैं। भास्कर के बारे मे इस कथन से एक और बात जाहिर होती है। भास्कर के समय तक हमारे देश के पंडित पुराने मतो का खडन-मडन करने मे गौरव का अनुभव करते थे। लेकिन भास्कर के बाद खडन-मडन की यह सही प्रथा

बद हो गई और लोग मानने लग गए कि पुराना सबकुछ परम सत्य है। नतीजा यह हुआ कि भास्कर के बाद आगे के लगभग सात सौ साल तक उनकी कोटि का वैज्ञानिक हमारे देश मे फिर कोई नही हुआ।

भास्कराचार्य प्राचीन भारत के अंतिम महान वैज्ञानिक थे।

● ● ●